आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली

ओ३म्

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

सुरेन्द्र कुमार रैली

11

नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत करने का उपक्रम

बालक और युवा ही भारत के भावी कर्णधार और निर्माता होंगे। लेकिन आज हमारी इस अमूल्य सम्पत्ति को निर्ममतापूर्वक विनष्ट किया जा रहा है। अपने इस मूलधन का विनाश हम खुली आँखों से देख रहे हैं। अमेरिकी वैश्वीकरण का घातक आक्रमण हमारे बालकों और युवाओं पर ही लगातार हो रहा है।

टी.वी., मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट ऐसे दुर्दमनीय साधन हैं जिनके द्वारा नई पीढ़ी के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान हो सकता था, परन्तु ये साधन तो बन्दर के हाथ में पलीते की तरह पड़ गये हैं और इनके द्वारा नयी पीढ़ी को अपसंस्कृति के जाल में बड़ी सुगमता से फँसाया जा रहा है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा और उससे संलग्न आर्य विद्या परिषद् ने नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत, संयमी, संवेदनशील, उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करने वाले नागरिक बनाने के लिए एक स्तुत्य उपक्रम हाथ में लिया है। शिष्टाचार और नैतिक शिक्षा का प्रचार और प्रसार ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने इस विषय को लक्ष्य कर 12 भागों (कक्षा 1 से 12 तक) में व्यावहारिक और प्रभावशाली साहित्य का निर्माण किया है। इन पुस्तकों में छात्रों के शिष्टाचार और नैतिक विकास को दृष्टि में रखकर सामग्री प्रस्तुत की गयी है। छात्रों में उत्तम संस्कारों और आस्तिकता पर बल दिया गया है। इन पुस्तकों में संध्या और यज्ञ के साथ सदाचार की शिक्षा देने वाली सामग्री दी गयी है।

इन 12 पुस्तकों के लेखक व आर्य विद्या परिषद् के प्रस्तोता, श्री सुरेन्द्र कुमार रैली के धर्म, समाज और देश के प्रति सात्विक चिन्तन का ही मधुरफल है। लेखक ने प्रारंभ में ही बालकों को 12 अनिवार्य और आवश्यक बातें समझाई हैं। बालक के वैयक्तिक जीवन के साथ घर, परिवार, समाज, देश और धर्म का ज्ञान प्रश्नोत्तर शैली में कराया है। नित्यप्रति के व्यावहारिक ज्ञान से बालकों को अवगत कराया है। पुस्तक में ओ३म्, ईश्वर, वेद, वैदिक संध्या, प्रार्थना, गायत्री मन्त्र, वर्ण व्यवस्था, सत्यार्थ प्रकाश, कर्मफल, अग्निहोत्र, माँस भक्षण निषेध, त्रैतवाद, गोकरुणानिधि, मद्यपान निषेध, भारतीय दर्शन आदि विषय चर्चित हैं। दूसरे भाग में महापुरुषों के प्रेरणाप्रद चरित्र पुस्तकों की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं। माता–पिता–गुरु की सेवा, अनुशासन, संयम, नमस्ते, स्वच्छता, सत्संगति, आसन प्राणायाम, एकता, श्रम, निष्ठा, शिष्टाचार, मित्रता, उत्तरदायित्व, सन्तोष, कर्तव्य परायणता, ब्रह्मचर्य, साहस, भ्रातृभाव इत्यादि सद्गुणों की शिक्षा, छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से, इस माला में अच्छी तरह चमक रही है। आर्य, आर्यावर्त, आर्य–समाज, गुरूकुल, डी.ए.वी., संस्कृत भाषा, इत्यादि विषयों का समावेश लेखक की सूझबूझ की दाद देता है। इन पुस्तकों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। पुस्तकों की भाषा प्रांजल, शैली सुबोध और हृदयग्राही है। छपाई, साज–सज्जा नयनाभिराम हैं। मूल्य अतिअल्प है। यह पुस्तकें घर–घर पहुँचने योग्य हैं।

- कै. देवरत्न आर्य

प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

मुद्रक : एस.एन. प्रिंटर्स, 1/11807, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रार्थना मंत्र

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।

यजु० ।३० ।३ ।

अर्थ

हे समस्त संसार के उत्पन्न करने वाले शक्तिमान् प्रभो! हमारे समस्त दुर्गुण, दुष्कर्मों व दुर्व्यसनों को दूर करो और जो कल्याणकर गुण, कर्म व स्वभाव हो उसकी प्राप्ति कराओ।

26

जय घोष

जो बोले सो अभय–**वैदिक धर्म की जय**

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चंद्र की–**जय**

योगीराज श्री कृष्ण चंद्र की–**जय**

गुरुवर विरजानंद दंडी महाराज की–**जय**

ऋषिवर स्वामी दयानन्द की–**जय**

धर्म पर मर मिटने वालों की–**जय**

देश पर बलिदान होने वालों की–**जय**

भारत माता की–**जय**

गौ माता का–**पालन हो**

आर्यसमाज–**अमर रहे**

वेद की ज्योति–**जलती रहे**

ओ३म् का झंडा–**ऊँचा रहे**

हमारा संकल्प–**कृण्वंतो विश्वमार्यम्**

वैदिक ध्वनि–**ओ३म्**

सबको वैदिक अभिवादन–**नमस्ते जी।**

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

(भाग-11)

सुरेन्द्र कुमार रैली
एम.ए., एलएल.बी
प्रेरक व शिक्षाविद्
प्रस्तोता, आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

पहला संस्करण – 2005
द्वितीय संस्करण – 2005
तृतीय संस्करण – 2006
आठवां संस्करण – 2011

मूल्य : ₹ 35.00

आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

1.	भूमिका	3
2.	शिक्षकों से	5
3.	आर्यसमाज	6
4.	वेद का संसार को संदेश	10
5.	सत्य और असत्य की परीक्षा	17
6.	प्रत्यक्ष-प्रमाण की सीमाएँ	20
7.	ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्	23
8.	रोग रहित जीवन	28
9.	व्यवहार भानु	34
10.	स्वामी श्रद्धानन्द	55
11.	स्वामी दयानंद के जीवन की मुख्य घटनाएँ	62
12.	गुरु गोविंदसिंह	64
13.	महारानी लक्ष्मीबाई	70
14.	वैदिक प्रश्नोत्तरी	74
15.	भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	76
16.	महान् गुण : पुरुषार्थ	82
17.	महान् गुण : अनुशासन	87
18.	महान् गुण : कर्त्तव्यपालन	90
19.	महान् गुण : देशभक्ति	95
20.	महान् गुण : ब्रह्मचर्य पालन	98
21.	महान् गुण : त्रुटियों पर विजय पाना	103
22.	महान् गुण : बातचीत की कला	110
23.	आर्यवीर दल एवं आर्यवीरांगना दल	115
24.	ओ३म् ध्वज का गीत	122
25.	भजन	124
26.	जयघोष	128

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है– अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
8. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

प्रभु का धन्यवाद

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं गंधर्व मुनिजन धन्यवाद।।
मंदिरों में कंदरों में पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिवर धन्यवाद।।
करते हैं जंगल में मंगल पक्षिगण हर शाख पर।
पाते हैं आनंद, मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद।।
कूप में, तालाब में, सागर की गहरी धार में।
प्रेम-रस में तृप्त हो, करते हैं जलचर धन्यवाद।।
शादियों में, कीर्तनों में, यज्ञ और उत्सव के आदि।
मीठे स्वर से चाहिए, करें नर-नारी सब धन्यवाद।।
गान कर 'अमीचंद' भजनानंद ईश्वर स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद।।

भूमिका

शिक्षा से ही मानव जीवन का विकास होता है और इसके द्वारा मनुष्य के शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास होता है। विद्यालयों में विभिन्न विषयों का पठन-पाठन विद्यार्थियों को अपने जीवन में सही दिशा प्राप्त करने में सहायक होता है, परन्तु उसका आत्मिक विकास, नैतिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है, और इसी से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए मानवीय मूल्यों की शिक्षा मिलती है। आर्यसमाज का सदैव प्रयास रहा है कि इन मानवीय मूल्यों से विद्यार्थियों को प्रारम्भ में ही अवगत करा दिया जाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली ने शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई हैं जिनके द्वारा उनमें अच्छे संस्कार और ईश्वर में विश्वास पैदा हो, तथा संध्या-यज्ञ आदि के साथ-साथ महापुरुषों के जीवन-चरित्र, उनकी शिक्षाएँ और सदाचार की शिक्षा देने वाली कहानियां भी सम्मिलित की गई हैं।

इन पुस्तकों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के वर्ष 2000 के पाठ्यक्रम को भी ध्यान में रखा है जिसमें निर्देश दिया गया है कि बच्चों में सुरुचिपूर्ण संवेदनशीलता, स्वस्थ जीवन शैली, सकारात्मक सामाजिक चेतना, परिश्रम के प्रति आदर व नैतिक मूल्यों में आस्था का समावेश होना चाहिए ताकि वह दूसरों के

विचारों को बड़ी नम्रता से समझते हुआ सद्भाव एवं विवेक से अपनी कथनी और करनी में उन्हें लाएं।

हमारा प्रयास है कि हम विद्यार्थियों में सत्य, सद्भाव, सहयोग, ईमानदारी और परिश्रम करने जैसे अनेक गुणों का उनके जीवन में समावेश कर सकें।

इन 12 पुस्तकों के लेखन में जिन-जिन महानुभावों से प्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके लेखों, कहानियों, गीतों व भजनों आदि के माध्यम से परोक्ष रूप से सहयोग मिला है, विशेष रूप से डा० गंगा प्रसाद जी, डा० महेश वेदालंकार जी, डा० रघुवीर वेदालंकार जी, डा० कमल किशोर गोयनका जी, डा० सत्यभूषण वेदालंकार जी, श्री धर्मपाल शास्त्री जी एवं श्री यशपाल शास्त्री जी, मैं उन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि विद्यार्थी, अध्यापकवृंद और अन्य लोग इस पुस्तक को उपयोगी पायेंगे और विद्यार्थियों को सुसंस्कृत बनाकर राष्ट्रनिर्माण की सतत् पुण्यप्रक्रिया में सहयोगी होंगे।

सुरेन्द्र कुमार रैली

अटल विश्वास

भरोसा कर तू ईश्वर का, तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जाएगा, तुझे रोना नहीं होगा।।
कभी दुख है कभी सुख है, यह जीवन धूप छाया है।
हँसी में ही बिता डालो, बितानी ही यह माया है।।
जो सुख आए तो हँस देना, जो दुख आए तो सह लेना।
न कहना कुछ कभी जग से, प्रभु से ही तू कह लेना।।
ये कुछ भी तो नहीं जग में, तेरे बस कर्म की माया।
तू खुद ही धूप में बैठा, लखै निज रूप की छाया।।
कहाँ ये था कहाँ तू था, कभी तो सोच ओ बंदे।
झुका कर सीस को कहदे, प्रभु वंदे प्रभु वंदे।।

25

भजन
ईश्वर का गुण-गान

प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर।
मन मंदिर में गाफिला, भक्ति दीप जलाया कर।।
सोने में तो रात गुज़ारी, दिन भर करता पाप रहा,
इसी तरह बरबाद तू बंदे, करता अपना आप रहा।
प्रातः समय उठ ध्यान से, सत्संग में तू जाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर।।१।।
नर तन के चोले का पाना, बच्चों का कोई खेल नहीं,
जन्म जन्म के शुभकर्मों का, होता जब तक मेल नहीं।
नर तन पाकर प्रेम से, उत्तम कर्म कमाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर।।२।।
पास तेरें है दुखिया कोई, तूने मौज उड़ाई क्या ?
भूखा प्यासा पड़ा पड़ोसी, तूने रोटी खाई क्या ?
पहले सबसे पूछकर, फिर तू भोजन खाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर।।३।।

♦♦♦

शिक्षकों से

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की इस पुस्तक का उद्देश्य बच्चों में सहजभाव से अच्छे संस्कार पैदा करना है। उनमें सदाचार के प्रति निष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता एवं धार्मिक रूचि आदि गुण उत्पन्न करके उन्हें शालीन, शिष्ट, अनुशासनप्रिय और कर्तव्यनिष्ठ बनाना है। इसलिए शिक्षक इस विषय को ऐसी मधुर शैली से पढ़ाएं, जिससे बच्चों की इस ओर रूचि बढ़े और वह स्वतः बड़ी आतुरता से इस विषय के घण्टे के आने की प्रतीक्षा किया करें।

शिक्षक को पहले दिन से ही शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा के विषय का परिचय कराते हुए, विद्यार्थियों को इसकी उपयोगिता से अवगत करा देना चाहिए कि शिक्षा प्राप्ति के बाद वह चाहे किसी क्षेत्र में भी कार्यरत हों, यह ज्ञान उनको उनके दैनिक जीवन में आयुभर काम आएगा।

शिक्षकों से अनुरोध है कि इस पुस्तक के पाठों को रटाने का प्रयत्न न करें। बच्चों को केवल अच्छी तरह से उदाहरण देकर बात समझा दें। परीक्षा में प्रश्न पूछने की शैली वैसी ही होगी जैसी अन्य विषयों में होती है।

सुरेन्द्र कुमार रैली

3

आर्यसमाज

संसार की सभी क्रान्तियों का मुख्य आधार वैचारिक क्रान्ति रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती एक क्रान्तिकारी विचारक थे। आर्यसमाज की विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना 7 अप्रैल 1875 में की थी। उनकी प्रेरणा से आर्यसमाज ने गत वर्षों में धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक और आर्थिक प्रायः सभी क्षेत्रों में नयी आकांक्षाओं, दिशाओं, आशाओं और संभावनाओं को जन्म दिया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हमें जो धार्मिक जीवन दर्शन दिया, वह शाश्वत सत्यों पर आधारित है। आज के वैज्ञानिक युग में वह सर्वप्रकारेण खरा है। उसमें कोई अंधविश्वास और निरर्थक रीति रिवाज नहीं है। इस दर्शन की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं –

1. ईश्वर एक है और वह एक निराकार शक्ति है।

2. आत्मा अनादि और अमर है। वह कर्म करने में सर्वथा स्वतंत्र है। स्वस्थ एवं सम्पन्न शरीर उसका आवश्यक साधन है।

3. स्थूल जगत् अर्थात् प्रकृति का अस्तित्व पृथक् और अनादि है।

4. कर्म और उसका परिणाम पुनर्जन्म है। यह केवल भाग्य या ईश्वर इच्छा पर न होकर जीवात्मा के पुरुषार्थ और कर्म पर आधारित है।

इसी ध्वजा को लेकर कर में।
भर दें वेद-ज्ञान घर-घर में।
सुभग शांति फैले जगभर में।
मिटे अविद्या की अँधियारी।।५।।

विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाएँ।
सत्य अहिंसा को अपनाएँ।
जग में जीवन-ज्योति जगाएँ।
त्याग-पूर्ण हो वृत्ति हमारी।।६।।

आर्य जाति का सुयश अक्षय हो।
आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो
आर्य बनावें वसुधा सारी।।७।।

जयति ओ३म् ध्वज व्योम-बिहारी
विश्व-प्रेम प्रतिमा अति प्यारी।।

24
ओ३म् ध्वज का गीत

जयति ओ३म् ध्वज व्योम-बिहारी।
विश्व-प्रेम-प्रतिमा अति प्यारी।।

सत्य सुधा बरसाने वाला
स्नेह-लता सरसाने वाला
सौम्य-सुमन विकसाने वाला
विश्व-विमोहक भवभयहारी।।१।।

इसके नीचे बढ़ें अभय-मन।
सतपथ पर सब धर्मधुरी जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन।
आलोकित होवें दिशि सारी।।२।।

इससे सारे क्लेश शमन हों।
दुर्मति दानव द्वेष दमन हों।
अति उज्ज्वल अति पावन मन हों।
प्रेम तरंग बहे सुखकारी।।३।।

इसी ध्वजा के नीचे आकर।
ऊँच नीच का भेद-भुलाकर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर।
पंथाई पाखंड बिसारी।।४।।

5. सब प्रकार की समानता पर आधारित व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण एक दूसरे के पूरक हैं। सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें। मनुष्य को सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

6. ईश्वर और मनुष्य के बीच में किसी पैगम्बर, गुरु या मसीहा अथवा दूत की मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं है।

आज भारतवर्ष का सुधरा हुआ समाज आर्यसमाज की ही देन है। आर्यसमाज जन्मगत जात-पांत, छुआ-छूत, बाल-विवाह, पर्दा, दहेज आदि का विरोध करता है। आर्यसमाज गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था का पक्षपाती है। अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह और स्त्रीशिक्षा आदि के क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान अप्रतिम है।

आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को अनेक कुरीतियों और कमजोरियों से मुक्त करके सुसंगठित करने का प्रयास किया। आर्यसमाज ने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा इसके दरवाजे ईसाई, मुसलमानों आदि के लिए भी खोल दिये। आर्यसमाज ने कमजोर हिन्दू को साहसिक हिन्दू बनाया। महर्षि दयानन्द सरस्वती को योद्धा संन्यासी के रूप में स्मरण किया जाता है।

भारत में राजनैतिक चेतना और राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में आर्यसमाज का दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय और राष्ट्रीय था। महर्षि दयानन्द स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक के रूप में सदैव स्मरण किये जायेंगे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है, "माता-पिता के समान होने पर भी विदेशी राज्य स्वदेशी राज्य की बराबरी नहीं कर सकता। सुराज्य का विकल्प नहीं है।" इस आधुनिक परिकल्पना की घोषणा महर्षि ने बहुत पहले कर दी

थी। लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानंद, रामप्रसाद बिस्मिल, भाई परमानन्द, भगत सिंह आदि अनेक स्वतंत्रता आन्दोलन के वीर सिपाही, आर्यसमाज से सम्बन्धित थे।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान सुप्रसिद्ध है। उसके परिसरों में चलाए जा रहे हजारों विद्यालय डी०ए०वी० विद्यालय व कालेज, गुरुकुल, आर्य पुत्री पाठशालाएं, संस्कृत पाठशालाएं सम्पूर्ण भारत में और विदेशों में फैले हुए हैं। शिक्षा प्रसार के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना इन आर्यसंस्थाओं की विशेषताएँ हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय हरिद्वार आर्यसमाज की विश्वविख्यात संस्था है।

अस्पृश्यता भारतीय हिन्दू समाज का कलंक है। आर्यसमाज ने इसे दूर करने के लिए यथाशक्ति संघर्ष किया है। आर्यसमाजों में आजकल हरिजन कुलोत्पन्न पण्डित, पुरोहित यज्ञ, विवाह तथा अन्य संस्कार कराते हैं।

आर्यसमाज का प्रचार प्रसार भारत तक ही सीमित नहीं है। विदेशों में भी आर्यसमाज और आर्यप्रतिनिधि सभाएँ वेदप्रचार के कार्य में संलग्न हैं। हिन्दू धर्म, संस्कृति और हिन्दी भाषा का प्रचार विदेशों में आर्यसंस्थाएँ कर रही हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वयं गुजराती होते हुए भी हिन्दी भाषा को अपनाया तथा अपने ग्रंथों का प्रणयन हिन्दी भाषा में किया। आर्यसमाज का सारा कार्य हिन्दी भाषा में ही होता है। हिन्दी साहित्य के विकास में तथा हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्थापित करने में आर्य विद्वानों का प्रमुख स्थान रहा है।

वेद मानव मात्र के कल्याण की उद्घोषणा करते हैं। वेदों के अध्ययन के लिए संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है। आर्यसमाज के संस्कृत भाषा के अध्ययन पर विशेष बल दिया तथा संस्कृत

उठो दयानन्द के सिपाहियों

उठो दयानन्द के सिपाहियों समय पुकार रहा है।
देशद्रोह का विषधर फन फैला फुँकार रहा है।।
उठो विश्व की सूनी आँखें काजल माँग रही हैं।
उठो अनेक द्रुपद सुताएँ आँचल माँग रही हैं।।
मरघट को पनघट-सा कर दो जग की प्यास बुझा दो।
भटक रहे जो मरुस्थलों में उनको राह दिखा दो।।
गले लगा लो उनको जिनको जग दुत्कार रहा है ।।१।।
तुम चाहो तो पत्थर को भी मोम बना सकते हो।
तुम चाहो तो खारे जल को सोम बना सकते हो ।।
तुम चाहो तो बंजर में भी बाग लगा सकते हो।
तुम चाहो तो पानी में भी आग लगा सकते हो।।
जातिवाद जग की नस-नस में ज़हर उतार रहा है।।२।।
याद करो क्यों भूल गए जो ऋषि को वचन दिया था।
शायद वायदा याद नहीं जो आपने कभी किया था।
वचन दिया था ओ३म् पताका कभी न झुकने देंगे।
हवन कुण्ड की अग्नि घरों में कभी न बुझने देंगे।
लहू शहीदों का गद्दारों को धिक्कार रहा है।।३।।
कब तक आँख बचा पाओगे आग बहुत फैली है।
उजली-उजली दिखने वाली हर चादर मैली है।
लेखराम का लहू पुकारे आँख ज़रा तो खोलो।
एक बार मिलकर सारे ऋषि दयानन्द की जय बोलो।
वेदज्ञान का व्यथित सूर्य तुम्हें निहार रहा है।।४।।

क्रांतिवीर पं. रामप्रसाद बिस्मिल का गोरखपुर जेल से पत्र

गोरखपुर की जेल में बैठा माँ को लिखता परवाना।
देश धर्म का दीवाना ।।
जन्मदात्री जननी मेरी, ले अन्तिम प्रणाम मेरा।
जन्म जन्म तक ना भूलूँगा, माताजी अहसान तेरा।
सेवा ना कर सका आपकी, यहीं मेरा है पछताना ।।१।।

मेरी मौत का मेरी माँ से, जब सन्देश सुनाए।
मेरी याद में तेरी आँख से, आँसू ना बह जाए।।
वतन पे मरने वालों की माँ को, ना चाहिए घबराना ।।२।।

सब माताओं की माता है, मेरी भारत माता।
उसकी आज़ादी की भेट में, चढ़ने को मैं जाता ।।
जिसको प्यार नहीं माता से, उसका अच्छा मर जाना ।।३।।

होगा वतन आजाद एक दिन ऐसा भी आएगा।
स्वर्ण अक्षरों में माँ तेरा, नाम लिखा जाएगा
खेमसिंह भी गाएगा, बना–बना तेरा गाना।।४।।

भाषा के ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी भाषा में कराया।

महिलाओं को समाज में समानता दिलाने में आर्यसमाज की भूमिका निर्विवाद है। कन्याओं के लिए पाठशालाएँ आदि खोलने का महत्त्वपूर्ण कार्य आर्यसमाज ने ही सर्वप्रथम किया है। यहाँ 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' की भावना कार्य करती थी। इसे पूर्ण रूप से आर्य समाज ने समाप्त किया। स्त्रियों को यज्ञोपवीत पहनने, व उनके अध्ययन का अधिकार आर्यसमाज ने दिलाया। पर्दा, दहेज, बहुविवाह, बालविवाह आदि के विरूद्ध आन्दोलन तथा अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का समर्थन आर्यसमाज ने प्रभावशाली ढंग से किया।

आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है। आर्यसमाज का लक्ष्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाना है। महर्षि दयानन्द ने विश्व समाज की परिकल्पना सत्यार्थप्रकाश में की है। संयुक्त राष्ट्रसंघ आदि महर्षि दयानन्द जैसे महापुरुषों की विचारणा का ही परिणाम है। **आर्यसमाज के नियमों का मूल स्वर 'सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना' है।** सत्यार्थ प्रकाश आर्यसमाज की विचारधारा को सही रूप में सभी के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

– डॉ. गंगा प्रसाद

4

वेद का संसार को संदेश

यह निर्विवाद सत्य है कि वेद संसार का सबसे पुराना ग्रंथ है। घर में वृद्ध का सम्मान सभी करते हैं क्योंकि उसका आदेश सभी के लिए समान रूप से कल्याणकारी होता है। उसी भांति सृष्टि के ज्ञान में वयोवृद्ध होने के कारण वेद भी संसार के सभी प्राणियों के लिए कल्याण का निर्देश करता है।

वेद मनुष्य मात्र को समान समझकर सभी के लिए कल्याण के मार्ग का निर्देशन करता है। वह सत्य को सर्वोपरि मानता है। वेद में जो भी कुछ है, वह सब विज्ञान है, युक्ति, तर्क और न्याय सम्मत है। वेद में किसी देश, व्यक्ति, काल का वर्णन नहीं है। उसमें शाश्वत सत्य मार्ग का दर्शन है। वेद लौकिक, पारलौकिक उन्नति के लिए समान रूप से प्रेरक है। वेद की शिक्षाएँ सर्वांगीण हैं।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। श्रेष्ठ बनने के लिए प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परमधर्म समझकर शान्ति और आनन्द के मार्ग पर चलने का यत्न करना चाहिए।

मनुष्य भौतिक उपलब्धियों की दौड़ में अशान्ति, चिन्ता और पीड़ा के सागर में गिरता रहता है। ऐसी विषम स्थिति में संसार का विनाश और मृत्यु से बचाने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लुप्त होती हुई, महान ज्ञान राशि वेद का पुनरुद्धार किया और मानवता को अमर संजीवनी प्रदान की। उन्होंने धर्म को जीवन का अनिवार्य अंग बताया और स्पष्ट घोषणा की कि जीवन का

आर्यवीर गान

जो दुःखियों की सेवा में तन मन लगाए।
जो बरबाद उजड़े घरों को बसाए।
जो औरों को सुख देके खुद दुःख उठाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।१।।
जो अन्याय के आगे झुकना न जाने ।
जो तूफान आँधी में रुकना न जाने ।
मुसीबत से डर कर के छिपना न जाने ।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।२।।
जो मृत्यु का भय अपने मन में न लाए।
धधकती हुई ज्वाला में कूद जाए।
चकित कर दे जग को वह करके दिखाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।३।।
उसे करके छोड़े जो दिल में ठनी हो।
निडर हो इरादे का धुन का धनी हों
धर्म रक्षा में जिसकी छाती तनी हो।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।४।।
जो मैदान में लाजपत बन के निकले।
भगतसिंह सुखदेव दत्त बन के निकले।
जो शेरों पे चढ़ के भरत बनके निकले।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम।।५।।
जो ब्रह्मचर्य से अपना बल थाम रखे।
जो पुरुषार्थ परमार्थ से काम रखे।
जो रोशन दयानन्द का नाम रखें
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।६।।

आर्यवीरों का गीत

आर्यवीर दल रहा रहेगा प्राण आर्यों का ।
इससे ही होना है नव निर्माण आर्यों का ।।
गुरुवर दयानन्द का इससे गहरा नाता है।
आर्यवीर दल पुनः जागरण शंख बजाता है।।
लेखराम का लहू धमनियों में लहराता है।
सावधान शिशुपालो! चक्र सुदर्शन आता है। ।
सेना फिर से सजे यही कल्याण आर्यों का ।।१।।
आर्यवीर दल राख नहीं जलता अंगारा है।
आर्यवीर दल दयानन्द की आँख का तारा है।।
आर्यवीर दल देशभक्त वीरों की टोली है।
डायर की छाती में ऊधम सिंह की गोली है।।
न्यायालय में पक्का रहा प्रमाण आर्यों का ।।२।।
आर्यवीर दल पेचीदा प्रश्नों का उत्तर है।
आर्यवीर दल जहाँ वहाँ हर प्रश्न निरुत्तर है।।
आर्यवीर दल संघर्षों की आग में जलना है।
आर्यवीर दल कलयुग में सतयुग का सपना है।।
आर्यवीर दल संजीवन निष्प्राण आर्यों का ।।३।।
आर्यवीर दल सिद्धि नहीं है सिर्फ साधना है।
आर्यवीर दल सुप्त मनुज की दबी भावना है।।
आर्यवीर दल एक सत्य है नहीं कल्पना है।
आर्यवीर दल क्रान्ति सिन्धु है राष्ट्र वन्दना है।।
गीत 'मनीषी' तम में अग्निबाण आर्यों का ।।४।।

उत्थान निर्माण और शान्ति-आनन्द का उदात्त मार्ग केवल वेद की ऋचाओं में वर्णित है।

महर्षि महान् क्रान्तिकारी थे। वे धरती के अज्ञान को जला देना चाहते थे। मत और वादों को समाप्त कर देना उनका उद्देश्य था। उनका किसी से द्वेष या विरोध न था। वे किसी को कुमार्ग पर चलते नहीं देखना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि सभी लोग आर्य बनें, श्रेष्ठ बनें और सत्यमार्ग के पथिक हों।

अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होंने 'आर्यसमाज' की स्थापना की। आर्यसमाज का सर्वप्रथम उद्देश्य वेद का प्रचार करना है। आर्यसमाज मानव मात्र के कल्याण के लिए वेद के पावन संदेश को घर-घर तक पहुंचाने के लिए कृत संकल्प है।

विज्ञान और भौतिकता का आधुनिक युग में वर्धमान प्रवाह संसार से सत्य और शान्ति को सर्वथा समाप्त कर देगा। इस स्थिति पर गंभीर विचार की आवश्यकता है। यह शरीर का सब कुछ नहीं है, इसमें जो जीवन तत्व आत्मा है, उसकी भूख प्यास की चिन्ता किए बिना मनुष्य कभी मनुष्य नहीं बन सकता। संसार में केवल एक धर्म है और वह है सत्य। वह सत्य सृष्टिक्रम, विज्ञान सम्मत और मानव मन को आनन्द देने वाला है। मनुष्य की केवल एक ही जाति है 'मनुष्य' । मनुष्य और मनुष्य के बीच कोई भी जाति-वर्ण-वर्ग-देश की दीवार खड़ी करना जघन्यतम अपराध है। इन तथ्यों पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद ही ऐसा ज्ञान है, जो उक्त मान्यताओं को पुष्ट करता है। धरती को स्वर्ग बनाने के लिए वेद का प्रचार-प्रसार और उन पर आचरण परमावश्यक है।

वेद मनुष्य मार्ग के लिए उस मार्ग का निर्देश करता है जिस पर चलकर जन्म से मृत्यु तक उसे कोई कष्ट न आये। आनन्द और शान्ति मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाएँ हैं। उनको प्राप्त कर

दुःखों से छुटकारा पाने का सच्चा और सीधा मार्ग, वेद के पवित्र मंत्रों में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

1. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

—यजु0 40 । 2

वेदका आदेश है कि 'मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। उसके लिए इससे भिन्न जीवन का मार्ग नहीं है। ऐसा करने से कर्म बन्धन मनुष्य को जकड़ता नहीं।' वेद का आदेश है कि जीवन का समय काम में गुजरना चाहिए। केवल जीवित रहना मात्र उद्देश्य नहीं है, अपितु कर्म करते हुए जीवित रहना चाहिए। वेद ने कर्मशीलता के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। वेद के शब्दों में कर्म करते हुए बिताया हुआ जीवन ही वास्तव में मनुष्य जीवन कहलाने योग्य है।

2. ईशा वास्यमिदंꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

—यजु0 40 । 1

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है, वह सब ईश्वर से आच्छादित हैं। जो कुछ भोगों, ईश्वर की देन समझकर भोगो।

वैदिक मान्यता यह है कि संसार का प्रत्येक भाग ईश्वर से आच्छादित है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और संसार की व्यवस्था उसकी व्यवस्था है। सृष्टि में जो कुछ है, ईश्वर की व्यवस्था के अधीन है।

3. स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।।

—यजु0 23 ।15

हिन्दुओं की रक्षा व सेवा हेतु पश्चिमी पजाब के रावलपिण्डी, हजारा, जेहलम जिलों में लोगों को जबरदस्त सुरक्षा प्रदान की। पूर्वी बंगाल के नोआखली जिले में हिन्दुओं की निर्मम हत्याओं को रोकने के लिए आर्यसमाज की शिरोमणी संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने 200 आर्यवीरों को भेजा और अपने प्रधान संचालक श्री ओम प्रकाश त्यागी के नेतृत्व में अपनी जान की परवाह न करते हुए इन आर्यवीरों ने हजारों लोगों की जान बचाई। आर्यवीरों ने न केवल शरणार्थी शिविर लगाए बल्कि उन शिविरों को रात-दिन सुरक्षा प्रदान की।

स्वतन्त्र भारत में जब-जब देश पर प्राकृतिक आपदा आई, आर्यवीरों ने सदैव राहत कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। हाल ही में सन् 2004 में सुनामी लहरों ने जब दक्षिण भारत में कहर बरसाया तो आर्यवीर दल ने 48 घन्टों के भीतर ही पहला राहत शिविर लगा दिया जो पूरे भारत में सर्वप्रथम था और लोगों की सेवा में आर्यवीर जुट गए। इससे पूर्व सन् 2002 में जब गुजरात में भयंकर भुकम्प आया था तो आर्यवीर दल ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए कई लोगों की जानें बचाई। इससे पूर्व महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तराखंड में आए भूकंम्पों में भी आर्यवीरों ने अपने आर्यत्व का पूरा परिचय देते हुए, तन-मन-धन से तबाह हुए लोगों की सेवा की ।

आर्यवीर दल का पूरा इतिहास त्याग, बलिदान, देशभक्ति, सेवा और शौर्यगाथा से परिपूर्ण है। जिन्होंने धर्म एवं राष्ट्ररक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया, इन परिचित एवं अनाम शहीदों को शत-शत प्रणाम।

तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा ?
अपना खून गर्म करने को, नाम तुम्हारा लेगा।

इसी कुचक्र के शिकार हुए ।

धर्मान्ध लोगों द्वारा अपने नेताओं के बलिदान किए जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए सन् 1927 ई. को महात्मा हंसराज की अध्यक्षता में दिल्ली में एक विराट् महा सम्मेलन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप 26 जनवरी, 1929 ई० को आर्य रक्षा समिति के सुदृढ़ अंग के रूप में आर्यवीर दल की स्थापना की गई।

आर्यवीर दल की शाखा प्रत्येक प्रांत, नगर और आर्यसमाज में स्थापित की जाने लगी। इसके नियमित संचालन के लिए बलिष्ठ आर्यवीरों को शिविरों में प्रशिक्षित किया जाने लगा और इस प्रकार सर्वत्र क्षात्र धर्म का प्रचार–प्रसार होने से आर्य नेताओं पर होने वाले आक्रमण रूक गए। सिंहों की दहाड़ सुनकर गीदड़ माँदों में जा छिपे। आर्यजनों के भव्य सम्मेलन, उत्सव, मेले, शोभायात्रा आदि अब निर्विघ्न संपन्न होने लगे। आज भी स्थानीय आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव से लेकर आर्य जगत के बड़े-बड़े महासम्मेलनों और आयोजनों की व्यवस्था और सुरक्षा आर्यवीर दल के आर्यवीरों द्वारा संभाली जाती है।

आर्य युवकों ने आर्यवीर दल की कमान संभाली तो आर्य युवतियां पीछे कैसे रह सकती थी, उन्होंने भी आर्य वीरांगना दल का गठन करके आर्यवीर दल के सिद्धांतों और कार्यकलापों के अनुरूप मातृशक्ति के नेतृत्व का दायित्व संभाला।

आर्यवीरों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया और 1942 के "भारत छोड़ो-करो या मरो" के आन्दोलन के संग्राम में कूद पड़े। आर्यवीर दल ने हैदराबाद रियासत को भारत में विलय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत विभाजन के समय हुए हिन्दुओं के नरसंहार को रोकने और

बलवान् आत्मा ! तू आप अपने शरीर को समर्थ बना, आप यज्ञ कर, आप सेवा कर । तेरी महिमा किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होगी।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ।।

यजु0 17 ।46

मनुष्यो ! आगे, बढ़ो । शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। भगवान् तुम्हें अपनी शरण प्रदान करें। तुम्हारी भुजाएं उग्र हों जिससे कोई तुम्हें हानि न पहुंचा सके।

इन वेद मंत्रों में बताया गया है कि कौन से कर्म उपयोगी हैं और मनुष्य को करने चाहिए। पहला मंत्र व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित है। इसमें बताया गया है कि व्यक्ति की महिमा या बड़ाई किसी दूसरे की देन नहीं हो सकती । वह उसके अपने श्रम का फल होती है। व्यक्ति का प्रथम काम तो अपने शरीर को बनाना है।

दूसरे वेद मंत्र में स्पष्ट आदेश है कि 'आगे बढ़ो ! शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। तुम्हारी भुजाएं उग्र हों, जिससे कोई तुम्हें हानि न पहुंचा सके। आजकल जिन राष्ट्रों के हाथ में शक्ति है, वे उस आदेश को व्यवहार में ला सकते हैं। जो राष्ट्र अशक्त है, वे अहिंसा के गुणगान के अतिरिक्त कुछ भी नही कर सकते। स्वामी दयानन्द ने अहिंसा का अर्थ वैर-त्याग किया है। यही इसका तत्व है। मैं तो किसी का शत्रु नहीं, परन्तु यदि कोई मुझ से शत्रुता करता है, तो मुझे बताना चाहिए कि इस विशाल दुनिया में जीने का मुझे भी अधिकार है।

4. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना : ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्ति वाम्।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

–अथर्व० 3 ।30 ।2–3

'पुत्र पिता के अनुकूल चलने वाला हो, माता के साथ एक मन वाला हो। पत्नी पति के साथ ऐसी वाणी बोले जो शहद की मिठास वाली और शान्ति देने वाली हो।'

भाई भाई के साथ द्वेष न करे। बहन बहन के साथ द्वेष न करे। एक मत वाले, एक व्रत धारण किये हुए हितकर रीति से एक-दूसरे से बातचीत करें।

इन मंत्रों में पति-पत्नी का व्यवहार संतान का व्यवहार और भाई बहनों का पारस्परिक व्यवहार बतलाया गया है। एक दूसरे की ओर सद्भावना और दूसरे के दुःख-दर्द को समझना, इस व्रत का अंश है। अतः समस्त परिवार मधुरता से, एक दूसरे का अनुगामी, सहयोगी होकर जीवन बिताए।

5. अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।।

—अथर्व 10 |8 |32

'पास बैठे हुए को छोड़ता नहीं, पास बैठे हुए को देखता नहीं। देव के काव्य को देख, जो न कभी मरता है, न बूढ़ा होता है।'

यह वेदमंत्र ईश्वर की गरिमा के सम्बन्ध में बहुमूल्य शिक्षा देता है। मंत्र के पहले भाग में जीवात्मा के विचित्र व्यवहार के लिए कहा गया है। यह अपने एक साथी प्रकृति से चिपटा हुआ है, उसे छोड़ता नहीं और दूसरे साथी परमात्मा को देखता नहीं। यही सारे रोग का मूल कारण है। जो प्रभु को जान जाता है, उसके काव्य को जान जाता है, वही वास्तव में सज्ञान है। प्रभु की अपार महिमा मनुष्य का सच्चा मार्ग दर्शन करती है। ईश्वर को जाने बिना मनुष्य मनुष्य को भी नहीं जान सकता। अपने लक्ष्य को नहीं समझ सकता और न धार्मिक जीवन को ही व्यतीत कर सकता है। इसलिए धर्मपूर्वक कार्य करने के लिए ईश्वर के स्वरूप को समझना चाहिए।

23
आर्यवीर दल एवं आर्यवीरांगना दल

प्रत्येक जीवंत संगठन की युवा इकाइयाँ होती हैं जिनमें मंजे हुए कार्यकर्त्ता तैयार किए जाते हैं ताकि भविष्य में वह अपने संगठन का कार्य संभाल सकें और उसे, निरंतर आगे की ओर बढ़ाते रहें।

इसी आशय को लेकर आर्यसमाज में युवकों के लिए आर्यवीर दल और युवतियों के लिए आर्यवीरांगना दल की स्थापना की गई जो न केवल इस संगठन की जान है अपितु अज्ञान, अन्याय और अभाव का मुकाबला करने के लिए कृतसंकल्प है। इनमें राष्ट्रीयता कूट–2 कर भरी हुई है और जाति-पाँति, छुआछूत के ज़हर से अछूती, मानव मात्र की सेवा करने का आदर्श लेकर ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम''–'सारे संसार को श्रेष्ठ बनाओ' ही जिसका उद्घोष है और देव दयानन्द के सपनों का आर्यराष्ट्र निर्माण का अरमान है।

आर्यवीर दल की स्थापना

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी अभियान से पौराणिक हिन्दू, मुसलमान और अन्य मतावलम्बियों में खलबली मच गई और वह इस क्रांति की ज्वाला को बुझाने के लिए नित नए षडयंत्र रचने लगे। स्वामीजी के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायी और अधिक उत्साह से पाखण्ड और अधर्म को मिटाने में जुट गए। उनके तर्कों के तीरों के उत्तर तो इन विरोधियों के पास नहीं थे, लेकिन उन्होंने इन महापुरुषों पर प्राणघाती आक्रमण शुरू कर दिए और अमर शहीद वीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल

बीच-बीच में पुट हो। कहीं उतार हो, कहीं चढ़ाव। कहीं विराम हो, कहीं धाराप्रवाह। बात करने में जिह्वा बेचारी अकेली ही न रहे। – हाथ-पाँव भी अभिनय करें, आँखें कभी फैलें, कभी सिकुड़ें। छाती कभी तन जाये। सिर कभी झुक जाये। स्वर कभी धीमा पड़ जाये। आवाज कभी उभर जाए, किंतु यह सब बात को सजीला, रंगीला, भड़कीला बनाने के लिए हो। यदि हमारा अंग-विन्यास भावों के अनुकूल न हुआ तो बनती बात भी बिगड़ जायेगी। इससे हमारी बात रसीली और सजीली बनती है, क्योंकि विषय के अनुसार अंगों की क्रिया से हमारी बातचीत में अभिनय या एक्टिंग का संयोग हो जाता है। जिस बात को हमारी वाणी कहती है उसे हमारे दूसरे अंग और अधिक स्पष्ट कर देते हैं। बात कहने वाले को भी स्वाद आता है, सुनने वाले को भी।

(7) 'इस हाथ दे उस हाथ ले' – जैसे हम चाहते हैं कि लोग हमारे साथ ऐसे बातचीत करें, वैसे ही हम भी उनके साथ करें। सरल शब्दों में हम यह समझ लें कि जो बात बुरी लगती है, वह दूसरों को भी लग सकती है। जिससे हमें पीड़ा पहुँचती है उससे दूसरों को भी कष्ट पहुँच सकता है।

बात करने की कला सीखने के लिए बात कीजिए – मित्रों में, साथियों में, सहपाठियों में और बंधुओं में।

6.मनुर्भव जनय दैव्या जनम्।।

ऋग्वेद 10/53/1

मनुष्य बने। वेद में कहीं भी हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई या बौद्ध बनने की बात नहीं कही गयी। संसार में केवल एक ही धर्मग्रंथ है जो आदेश देता है कि 'तू मनुष्य बन' क्योंकि मनुष्य बनने पर तो सारा संसार ही तेरा परिवार होगा। 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।' उदार जनों के लिए तो सारा संसार ही परिवार होता है। वेद संसार के सभी मनुष्यों को एक जाति मानता है। मनुष्य मनुष्य के बीच की सारी दीवारें मनुष्य को मनुष्य से अलग कर विवाद, युद्ध, द्वेष उत्पन्न करती है। 'वेद' शान्ति के लिए इन सभी दीवारों को समाप्त करने का आदेश देता है। सभी से मित्रता का आदेश देता हुआ, वेद कहता है – 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' सब को मित्र की स्नेह सनी आंख से देख। कितनी उदात्त भावना है। प्राणीमात्र से प्यार का कितना सुन्दर उपदेश है।

वेद ने एकता और सह-अस्तितत्व का अति सुन्दर उपदेश दिया है – 'संगच्छध्वं, संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।' तुम्हारी चाल, तुम्हारी वाणी, तुम्हारे मन सभी एक समान हों। इस उपदेश पर चलें तो धरती स्वर्ग कैसे न बने ? मनुष्य मात्र की एकता के लिए ही उपदेश है कि 'यत्र विश्वं भवति एकनीडम्।' कोई देश, जाति, वर्ग की दीवार मध्य में न हो। सभी कुछ हम मिलकर आपस में बांटकर उपयोग करें तो फिर अभाव कैसे रहे?

वेद के मार्ग पर चल कर ही यह धरती स्वर्ग बन सकती है। अशान्ति और द्वेष के वर्तमान वातावरण में मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए, यह परमावश्यक है कि हम वेद के महत्त्व को समझें और वेद के आदेश का अपने जीवन में पालन करें।

7. तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।

—यजुर्वेद 40 ।5

'वह (ब्रह्म)—जगत् उत्पन्न करने के लिए, गति शून्य पृथ्वी को गति देता है, परन्तु स्वयं गति में नहीं आता। वह दूर है, वह समीप भी है। वह इस सब जगत् के अन्दर भी है और बाहर भी है।'

परमात्मा सर्वव्यापक है और सर्वशक्तिमान् है।

8. ऋतावान् ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरय :।।

—ऋग्वेद 7 ।66 ।13

'जो मनुष्य सत्य के पक्षपाती, सत्य की रक्षा करने वाले, सत्य की वृद्धि करने वाले और झूठ के विरोधी होते हैं, उनकी शरण में हम सब मनुष्य होवें और जो विद्वान् हैं, वे भी उनका आसरा पकड़ें।'

वेद का आदेश है कि हमें सदैव सत्य की अधीनता में रहना चाहिए।

वेद के पवित्र मंत्रों में जो उपदेश दिये गये हैं, वे उदात्त और कल्याणकारी हैं। हमें वेद के आदेशों का पालन करना चाहिए, वेद का स्वाध्याय करना चाहिए और वेद का प्रचार करना चाहिए क्योंकि वेद का प्रचार प्रसार ही संसार को शान्ति और आनन्द के मार्ग पर चला सकता है।

—डॉ. गंगा प्रसाद

(2) बात के अच्छे होने की दूसरी शर्त यह है कि कहने वाला अपनी बात का लम्बा-चौड़ा बखान न करने लगे। इससे लोग सुनते-सुनते तंग आ जाते हैं। बात सीधी और स्पष्ट हो। बात अच्छे ढंग से कहिए – न लम्बी, न छोटी! न बहुत मीठी, न बहुत कड़वी। उसमें सच्चाई तो हो, पर कल्पना से उसे मनोरंजक भी बनाना आवश्यक है, लेकिन गप्पें हाँकना कभी उचित नहीं।

(3) जिस बात से झगड़ा उठ खड़ा हो, वह न कहो। जिस बात को सभी जानते हैं, उसे न ही दुहरायें तो बेहतर है।

(4) बात का लक्ष्य न तो किसी को खुश करना हो और न किसी पर व्यंग्य कसना – धर्म या जात-पात को ठेस पहुँचाना तो कभी भी न होना चाहिए और न ही किसी को नीचा दिखाना।

(5) अपनी हाँकते जाना और दूसरे को कहने का अवसर ही न देना, एक बड़ा दोष है। कुछ हम कहें, कुछ दूसरे कहें – तभी बातचीत का आनन्द आता है। अपनी बात कहकर हमें दूसरों की बात भी धैर्यपूर्वक सुननी चाहिए।

(6) बातचीत एक कला तभी बनती है, जब बात को सुन्दर भाषा में कहा जाये। उचित और सुन्दर शब्द हों। छोटे और रसीले वाक्य हों। मुहावरों और लोकोक्तियों का

भयंकर युद्ध हुआ जिसमें लाखों लोगों ने अपनी जान गंवाई और सोने की चिड़िया भारतवर्ष बर्बाद हो गया। चुभती बातों के कारण ऐसी अनेक लड़ाइयाँ हुई और होती रहेंगी। काश! द्रौपदी एक कड़वी बात न करती तो महाभारत का युद्ध भी न होता जिसमें अठारह अक्षैहिणी सेना और बड़े-बड़े योद्धा मारे गये। तभी यह कहावत प्रसिद्ध है– "तलवार का घाव जल्दी भर जाता है, पर कटाक्ष का घाव कभी नहीं भरता!" इसलिए हमें बहुत सोच-समझकर मुँह से ऐसी बात निकालनी चाहिए जिससे किसी को ठेस न पहुँचे। पहले तोलो, फिर बोलो।

अतः आओ ! हम बातचीत की कला सीखें :

(1) अच्छी और सबके मनभाती बात वही कह सकता है जिसके पास कहने को मतलब की कोई बात हों । यूँ कुछ न कुछ तो हर कोई कह सकता है। मूर्ख भी, पागल भी। पर दूसरे तो तभी ध्यान से सुनेंगे जब वह किताबों की रटी-रटाई न होकर नई बात हो। नई बात तो अपने अनुभव से आती है - और अनुभव होता है दुनिया में काम करने से। अतः आपकी बात के पीछे आपका असली मतलब होना चाहिए। आपको पता होना चाहिए कि किस बात की ओर स्पष्ट संकेत कर रहे हैं। काम की बात को हर कोई सुनेगा, ध्यान से सुनेगा और उसकी प्रशंसा करेगा।

5

सत्य और असत्य की परीक्षा

आर्यसमाज का चौथा नियम है– **'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'** वैसे सभी मतावलंबी इससे सहमत हैं। किंतु सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग तो तभी हो सकता है जब हमें सत्य को पहचानना आता हो। महर्षि दयानंद के शब्दों में–'सत्य क्या है और असत्य क्या है ? इसकी परीक्षा के पाँच साधन हैं। इनमें प्रथम–ईश्वर, उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेद-विद्या। दूसरा–सृष्टिक्रम। तीसरा–प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण। चौथा–आप्तों का आचार, उपदेश, ग्रंथ और सिद्धांत। पांचवाँ–अपने आत्मा की साक्षी, अनुकूलता, जिज्ञासाकुलता, पवित्रता और विज्ञान।

1. ईश्वरादि से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो-जो ईश्वर का न्याय आदि गुण, पक्षपातरहित सृष्टि बनाने का कर्म और सत्य, न्याय, दयालुता, परोपकारिता आदि स्वभाव और वेदोपदेश से सत्य और धर्म ठहरे, वही सत्य और धर्म है और जो असत्य और अधर्म ठहरे, वही असत्य और अधर्म है।

2. सृष्टिक्रम उसको कहते हैं, जो सृष्टि के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध अर्थात् प्रकृति के नियमों के विपरीत हो वह मिथ्या और जो अनुकूल हो, वह सत्य कहाता है। जैसे, कोई कहे कि बिना माँ-बाप के लड़का, कान से देखना, आँख से बोलना

आदि बातें सृष्टिक्रम के विरूद्ध होने से मिथ्या है। इसी प्रकार महाभारत में भी कुंती का अपने पुत्र कर्ण को सूर्य से उत्पन्न करना भी सृष्टिक्रम के विरूद्ध है, अतः यह भी मिथ्या है। ईसा मसीह के बारे में भी प्रसिद्धि है कि वह बिना बाप के कुमारी मरियम नामक एक कन्या से पैदा हुआ था। ऐसा होना सर्वथा असंभव है, अतः यह मिथ्या है। इसी प्रकार चित्रों में गणेश जी का सिर हाथी का बनाया जाता है, हनुमान आदि का मुख बंदर का तथा पूँछ से युक्त चित्र बनाते हैं, इस प्रकार की सभी बातें सृष्टिक्रम के विरूद्ध होने से मिथ्या हैं।

3. प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों के आधार पर जो ठीक ठहरे वह सत्य तथा जो-जो विरूद्ध ठहरे वह मिथ्या समझना चाहिए। प्रत्यक्षादि प्रमाण इस प्रकार हैं :–

क. प्रत्यक्ष : कान, आँख आदि इंद्रियों का पदार्थ से संबंध होने पर जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष है।

ख. अनुमान : यह प्रत्यक्ष के आधार पर ही होता है। पहले देखी वस्तुओं में कार्य के आधार पर कारण का तथा कारण के आधार पर कार्य का ज्ञान होना अनुमान कहलाता है। यथा- आकाश में बादल (कारण) देखकर वर्षा (कार्य) का अनुमान करना तथा नदी का गँदला पानी एवं बाढ़ (कार्य) देखकर भी वर्षा (कारण) का अनुमान करना।

ग. उपमान : वन में मनुष्य की आकृति वाले किसी प्राणी को देखकर समझना कि यह वनमानुष है।

घ. शब्द : सत्योपदेष्टा ऋषि-मुनि का उपदेश तथा वेद।

ड. ऐतिह्य : भूतकाल के पुरुषों की चेष्टा, सृष्टि आदि पदार्थों की कथा।

यदि तुम सचमुच लोकप्रिय बनना चाहते हो तो एक गुर सीख लो – बातचीत कैसे की जाए ? इस प्रश्न का उत्तर इतना सरल नहीं जितना जिह्वा को तनिक हिलाकर मुँह से कोई बात कह देना। इसके अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं। महाभारत की एक घटना है।

कहते हैं कि पांडवों ने एक बहुत सुन्दर महल बनाया। महल में एक शिल्पी ने ऐसी कारीगरी दिखाई कि देखने वाला भौचक्का रह जाता था। जहाँ पानी का तालाब था वह तो सूखा फर्श दिखाई देता था और जहाँ पक्का फर्श था वह देखने वालों को तालाब दिखाई देता था। इस महल में कौरवों को भी निमंत्रण दिया गया। दुर्योधन जब घूम रहा था तो एक पक्का फर्श समझकर उसने ज्यों ही पाँव बढ़ाया त्यों ही वह कमर तक गहरे पानी में गिर पड़ा। खूब हँसी मची। आगे चलकर दुर्योधन ने जूते उतार लिए और टाँगों के कपड़े सिकोड़ लिए। गहराई के अंदाज से उसने पाँव रखा तो धड़ाम से गिरा, क्योंकि वहाँ तो वास्तव में पक्का फर्श था। इधर खिड़की पर बैठी द्रौपदी यह देखकर खूब हँसी और चिढ़ाकर बोली – "अंधे के पुत्र अंधे ही निकले!" बस, द्रौपदी का यह वाक्य दुर्योधन की छाती में तीर की तरह चुभ गया। उसने बदला लेने का निश्चय कर लिया। कहते हैं कि इसी एक कड़वी बात के कारण महाभारत का

22

महान् गुणः

बातचीत की कला

क्या तुम चाहते हो कि घर में तुम्हारा आदर हो?

क्या तुम चाहते हो कि बाहर तुम्हारी प्रशंसा हो?

क्या तुम चाहते हो कि साथी तुमसे स्नेह करें?

क्या तुम चाहते हो कि तुम जो कुछ कहो, लोग उसे ध्यान से सुनें, माता-पिता तुम्हारी बात मानें और विद्यालय के विद्यार्थी तुम्हें अपना नेता चुनें ?

च. अर्थापत्ति : एक बात को सुनकर प्रसंग से दूसरी बात जान लेना; जैसे किसी ने कहा कि मोहन दिन में खाना न खाने पर भी हृष्ट-पुष्ट है। इससे ज्ञात हुआ कि वह रात्रि में खाना खाता होगा।

छ. संभव : कारण से कार्य होना आदि।

ज. अभाव : कहीं पर किसी पदार्थ की अनुपस्थिति देखकर उसके अभाव का निश्चय करना।

इस प्रकार इन आठ प्रमाणों के आधार पर भी सत्यासत्य जाना जाता है।

4. आप्तों के आचार और सिद्धांत से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो-जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, पक्षपात-रहित, सबके हितैषी विद्वान् सबके सुख के लिए यत्न करें, वे धार्मिक लोग आप्त कहाते हैं। उनके उपदेश, आचार, ग्रंथ और सिद्धांत से जो युक्त हो वह सत्य और जो विपरीत हो वह मिथ्या है।

5. आत्मा से परीक्षा उसको कहते हैं कि जो-जो अपना आत्मा अपने लिए चाहे, सो सबके लिए चाहना और जो-जो न चाहे सो-सो किसी के लिए न चाहना। जैसा आत्मा में, वैसा मन में, जैसा मन में वैसा क्रिया में होने को जानने की इच्छा, शुद्धभाव और विद्या के नेत्र से देखकर सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिए।

☆☆☆

6

प्रत्यक्ष प्रमाण की सीमाएँ

स्वामी दयानंद सरस्वती ने प्रत्यक्ष प्रमाण और उसकी सीमाओं की बड़ी ही सुंदर व्याख्या की है, जिसके अनुसार यथार्थ ज्ञान के प्रमुख कारण को प्रमाण कहा जाता है। प्रमाणों की संख्या विस्तार में आठ तथा संक्षेप में तीन मानी गई है – प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त वचन या शब्द । इनमें प्रत्यक्ष सर्व प्रमुख प्रमाण है।

ज्ञानेंद्रियों (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण) का इनके विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के साथ साक्षात् संबंध होने पर उत्पन्न होने वाला ज्ञान और उस ज्ञान का प्रमुख कारण दोनों प्रत्यक्ष कहलाते हैं।

इस प्रकार शब्दों के प्रिय-अप्रिय होने, स्पर्श के शीत-उष्ण या कोमल-कठोर होने, रूप के मनोरम या बीभत्स होने, रस के मधुर, कटु आदि होने, किसी पदार्थ के सुगंध या दुर्गंधयुक्त होने का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा हुआ करता है।

किन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान की अपनी सीमाएँ हैं। इन सीमाओं के कारण ही अनुमान और शब्द प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए कोई वस्तु सामने विद्यमान होते हुए भी निम्नांकित

अपनी कमजोरियाँ और भूलें भी बता सको। जो तुम्हें अच्छी सलाह दे सके और समय-समय पर तुम्हारी त्रुटियाँ तुम्हें बता सके, जो तुम्हारी सहायता करके प्रसन्न हो, ऐसा साथी कोई अध्यापक, मित्र, माता-पिता, बहन-भाई या पड़ोसी हो सकता है।

4. आत्म निरीक्षण की डायरी – एक डायरी बनाओ जिसमें अपने गुणों और दोषों की सूची रखो। फिर प्रतिदिन रात को सोने के पूर्व दिन का हाल लिखो कि तुमने आज कौन-सा दोष किया, कितनी बार, क्या किया? तुमने कौन-सा अच्छा काम किया ?

अधिक नहीं, केवल पन्द्रह (15) दिन तक तुम उपर्युक्त चार बातों का अभ्यास करो। सोलहवें दिन तुम देखोगे कि तुम्हारे कुछ दोष बिल्कुल दूर हो गये हैं और कुछ आधे या आधे से कम रह गये हैं।

हमारा अनुभव है कि केवल तीन महीने में दोषी से दोषी बालक भी एक आदर्श बालक बन सकता है। अतः हे बालक, तुम भी यत्न करो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।

इनमें से कौन-कौन से गुण तुममें है? अपने दोष भी गिनो। उन्हें छिपाने का यत्न मत करो, बल्कि उन्हें जानकार दूर करने की योजना बनाओ। अपने दोषों को ध्यान से देखों तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे सब दोषों में बड़ा एक दोष है, वह सारी बुराई की जड़ है। दूसरे दोष उसकी टहनियाँ-पत्ते हैं। बस, इस मूल दोष को दूर करने के लिए कमर कस लो, फिर निम्नलिखित चार बातों की तैयारी करो :

1. दृढ़ संकल्प – पक्का इरादा कर लो कि अपने दोषों पर विजय पाकर रहूँगा। सफलता के लिए प्रातः-सायं ईश्वर से प्रार्थना करो।

2. आदर्श व्यक्ति की खोज – किसी ऐसे व्यक्ति को ढूँढ निकालो जिसमें वह दोष बिल्कुल न हो जिससे तुम छुटकारा पाना चाहते हो। इसके विपरीत जिस व्यक्ति में वह गुण भरपूर हो जिसे तुम ग्रहण करना चाहते हो, ऐसा आदर्श व्यक्ति तुम्हारा कोई अध्यापक, मित्र, पड़ोसी, संबंधी या कोई प्रसिद्ध नेता हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि तुम्हें गालियाँ देने की आदत है तो तुम देखो, जैसे तुम्हारा आदर्श व्यक्ति बातचीत करता है वैसे ही तुम भी करो। क्रोध में जैसे वह गालियों से बचता है वैसे ही तुम भी बचो। इसके विपरीत जिन लोगों में दोष है उनका संग छोड़ दो।

3. सच्चे साथी की सहायता – किसी ऐसे बड़े या छोटे साथी को चुन लो जो सच्चे दिल से तुम्हारा भला चाहता हो। जिसे तुम अपने दिल की बात कह सको, यहाँ तक कि

कारणों से इंद्रियगोचर नहीं हो पाती ।

अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।

सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात्समानाभिहारच्च।।

अत्यधिक दूरी, अत्यधिक समीपता, इंद्रियों के नाश, मन की अशांति, सूक्ष्मता, कोई आवरण, किसी से अभिभूत (दब) हो जाना और समान रूप वाली वस्तुओं में घुलमिल जाना आदि कारणों से कोई वस्तु होते हुए भी कभी-कभी इंद्रिय गोचर नहीं हो पाती ।

अतः ज्ञान की उपलब्धि केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से हो पाना हमेशा संभव नहीं है, क्योंकि कई स्थितियों में कोई वस्तु होती हुई भी होती प्रतीत नहीं हुआ करती। उसके ज्ञान के लिए अनुमान या आप्त वचन (शब्द प्रमाण) का सहारा लेना पड़ता है, जो निम्न प्रकार है :—

(1) अत्यंत दूर होना – आकाश में बहुत ऊँचा उड़ता हुआ कोई पक्षी अत्यंत दूर होने से दिखाई नहीं दिया करता ।

(2) अत्यंत समीप होना – आँखों में लगा हुआ अंजन (काजल) अत्यंत समीप होने से दिखाई नहीं देता।

(3) इंद्रिय नष्ट होना – अंधे को रूप की और बहरे को शब्द की प्रतीति नहीं हुआ करती ।

(4) मन का अनवस्थित होना – यदि मन में अशांति हो या वह कहीं और भटक रहा हो तो भी पता नहीं चलता, जैसे, दुष्यंत में मन लगे रहने के कारण शकुंतला को दुर्वासा ऋषि के शब्द सुनाई नहीं दिए थे।

(5) सूक्ष्म होना – इंद्रियों से संयुक्त होने पर भी परमाणु सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता।

(6) व्यवधान होना – पेड़ की ओट में पड़ा हुआ सर्प व्यवधान होने के कारण दिखाई नहीं देता ।

(7) अभिभव होना – सूर्य के प्रकाश से अभिभूत होने के कारण दिन में तारे दिखाई नहीं देते।

(8) समानाभिहार – अर्थात् एक जैसों का मेल होना – हौज के जल में डाला हुआ नल का एक लोटा जल अथवा गेहूँ के ढेर में डाला हुआ मुट्ठी भर गेहूँ, उस जैसा ही होने के कारण दिखाई नहीं देता ।

(9) अनुद्भव – उपर्युक्त कारिका में आए चकार से यहाँ अनुद्भव को ग्रहण किया गया है। यथा दधि में घृत और तिलों में तेल रहते हुए भी अनुद्भव के कारण दिखाई नहीं देता।

अतः किसी वस्तु की उपलब्धि का ना हो पाना उसके अभाव या अस्तित्वहीनता का द्योतक नहीं है।

उपर्युक्त नौ कारणों का संबंध भौतिक वस्तुओं की अप्रतीति से है। आत्म दर्शन और परमात्म दर्शन कर पाना तो इंद्रियों का विषय नहीं है। अंतःकरण से हृदय की गुहा में समाधि द्वारा आत्म दर्शन के पश्चात् आत्मा द्वारा ही परमात्मा का साक्षात्कार होना संभव है और यह दर्शन उस हृदयगुहा में ही हो सकता है, क्योंकि आत्मा तथा परमात्मा दोनों की स्थिति वहाँ ही है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से उस हृदय गुहा में भी है, जबकि आत्मा का स्थान तो केवल हृदय गुहा ही है।

6. भ्रातृभाव	6. झगड़ालु स्वभाव, रूखापन
7. संतोष	7. लालच, अधीरता
8. सेवा	8. मतलबी होना, कृतघ्नता
9. शिष्टाचार	9. असभ्यता, गँवारूपन
10. स्वच्छता	10. गंदगी, दरिद्रता
11. सहयोग	11. अलगाव की आदत
12. दया	12. क्रोधी, क्रूर स्वभाव
13. सत्संग	13. कुसंग
14. स्वाध्याय	14. अश्लील गानों, कहानियों में रुचि
15. स्वास्थ्य	15. रोग, बदपरहेजी, आलस्य
16. सादगी	16. तड़क-भड़क, फिजुलखर्ची, फैशनपरस्ती
17. साहस	17. कायरता, डरपोक स्वभाव
18. सहनशीलता	18. अधीरता
19. ब्रह्मचर्य	19. विलास, कुदृष्टि
20. कर्त्तव्यपालन	20. काम में दिल न लगना
21. उत्तरदायित्व	21. लापरवाही, कामचोर
22. संगठन	22. अकेलापन, स्वार्थी स्वभाव
23. ईमानदारी	23. छल, धोखा, ठगी
24. आत्मविश्वास	24. दूसरों पर निर्भरता
25. अनुशासन	25. गैरकानूनी स्वभाव, नियमों की उपेक्षा
26. आशा	26. निराशा

प्रसाद समझकर श्रद्धा से ग्रहण करो। फिर देखो, सत्य का कमाल। कुछ ही दिनों में तुम्हारी बुरी आदत अपने-आप छूट जायेगी और तुम श्रेष्ठ बालक बन जाओगे।

यह मत सोचो कि एक बार तुम गिर गये तो फिर उठ नहीं सकते। संसार में ऐसी कोई दुर्बलता नहीं जिस पर विजय न पाई जा सके। दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो भूल न करता हो। हम तो साधारण व्यक्ति हैं, बड़े-बड़े सेनापति, ऋषि, मुनि, संत, महात्मा भी बुराई का शिकार हो जाते हैं। अतः भटक जाना कोई अक्षम्य पाप नहीं। हाँ, उस बुराई से बचने का यत्न न करना अवश्य बड़ा पाप है।

"हाय ! मैंने अपने पाँवों पर आप कुल्हाड़ी मार ली,' यह सोचकर केवल रोना अपराध है। –'यदि मैं ऐसा न करता तो अच्छा होता,' ऐसी निराशा की बातें करना व्यर्थ है। इसके बदले हमें "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय,' यह सोचकर अपने सुधार-उद्धार का कोई उपाय करना चाहिए। देर न करो, आज ही दो सूचियाँ बनाओ– एक सूची अच्छे गुणों की, दूसरी सूची दुर्गुणों की।

उदाहरण के लिए सूची प्रस्तुत है :

अच्छे गुण	**दुर्गुण**
1. सत्य	1. असत्य, धोखेबाजी
2. नम्रता	2. अभिमान, अकड़
3. प्रसन्नता	3. चिड़चिड़ापन, चिंता
4. पुरुषार्थ	4. आलस्य
5. समय-पालन	5. देर करना, अनियमितता

7

'ब्राह्मण' 'आरण्यक' और 'उपनिषद्'

ब्राह्मण ग्रंथ

ब्रह्मन् का अर्थ है – ब्रह्म की व्याख्या या ब्रह्म का जानने-जनाने वाला। अतः मंत्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने के कारण ये ग्रंथ ब्राह्मण ग्रंथ कहलाते हैं। ब्रह्मन् का अर्थ यज्ञ भी है, अतः यज्ञों की व्याख्या एवं विवरण प्रस्तुत करने वाले ये ग्रंथ 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। ब्रह्मन् का अर्थ रहस्य भी है, अतः वैदिक रहस्यों के उद्घाटक होने से इन्हें 'ब्राह्मण' कहा जाता है। इनमें यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक (वैज्ञानिक) महत्त्व प्रस्तुत किया गया है। भट्ट भास्कर ने कर्मकांड तथा मंत्रों के व्याख्यान ग्रंथों को ब्राह्मण कहा है –

'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणं व्याख्यानग्रन्थः।'

वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रंथों का प्रयोजन निर्वचन, मंत्रों का विनियोग, अर्थवाद और विधि माना है।

ब्राह्मणों में प्रतिपाद्य विषय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है – विधि, अर्थवाद और उपनिषद्। विधि में यज्ञ तथा उससे संबद्ध कार्यकलाप के लिए नियम दिए गए हैं। अर्थवाद में यज्ञों का महत्त्व तथा उससे संबद्ध उपाख्यान दिए गए हैं। 'उपनिषद्' में

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों का समावेश है।

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ के लिए चार ऋत्विकों की आवश्यकता बताई गई है – होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। 'होता' नामक ऋत्विक यज्ञ में यजमान का साथ देता है। 'अध्वर्यु' यज्ञ की रक्षा करता है। 'उद्गाता' वेद के मंत्रों का गायन करता है। 'ब्रह्मा' चारों वेदों का ज्ञाता होता है। इसलिए चारों ऋत्विकों में इसका स्थान सर्वोच्च होता है। इसी के निरीक्षण एवं निर्देशन में यज्ञ होता है।

संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों का पृथक्-पृथक् स्वतंत्र अस्तित्व है। संहिताएँ मंत्र भाग हैं। इनका कर्मकांड में विनियोग होता है। ब्राह्मण भाग मंत्रों के विनियोग की विधि बताता है। इसमें से एक मूल और दूसरा उसका व्याख्यान या भाष्य है। यज्ञों में मंत्रों से ही आहुति दी जाती है। ब्राह्मण भाग उसकी उपयोगिता बताता है इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वेद शब्द मूलतः वैदिक संहिताओं का ही वाचक है। किंतु वैदिक साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का भी समावेश है। प्रत्येक 'वेद' के अलग-अलग 'ब्राह्मण' ग्रंथ हैं।

'आरण्यक'

वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रंथों के बाद आरण्यकों का स्थान है, जिन्हें ब्राह्मण ग्रंथों का परिशिष्ट (अतिरिक्त जोड़ा गया) कहा जा सकता है। 'आरण्यक' नाक अरण्य में अध्ययन किए जाने के कारण है। 'आरण्यक' का मुख्य विषय यज्ञों के अंदर निहित

सभा में बैठे एक भक्त से न रहा गया और उसने पूछ ही तो लिया – "मेरे भाई! अपनी बुरी आदत पर तुमने कैसे विजय पाई?"

कल के डाकू किंतु आज के सज्जन ने कहा – "मैंने अपनी बुरी आदत पर विजय पाई सत्य से और लोकनिंदा के भय से। बात यह हुई कि मैंने सबके सामने अपने बुरे कामों का हाल सत्य-सत्य कह देने का प्रण तो कर लिया, किन्तु जब मैं अपने काम का वर्णन करने सभा में आने लगा तो मेरे पाँव न उठे। मेरी बुराई सब लोग जान जाएँगे, यह विचार ही मुझे लज्जा में डुबो देने के लिए पर्याप्त था। इस प्रकार सत्य और लोक-लाज के भय से मैंने ऐसा काम करना ही छोड़ दिया जिसे सबके सामने कहने में मुझे ग्लानि लगे।"

यदि दुर्भाग्यवश तुम भी किसी बुरी आदत से विवश हो तो तुम भी गुरु नानकदेव के बताये हुए नुस्खे का प्रयोग करो। उस डाकू की तरह तुम्हारा भी अवश्य कल्याण होगा। यदि तुम्हें किताबें आदि चुराने, जुआ खेलने, छिपकर सिनेमा देखने, शराब, सिगरेट पीने, पान मसाला, गुटखा खाने या विद्यालय से भागने की बुरी आदत हो तो तुम भी सत्य की शरण में जाओ। तुम अपने गुरुजनों, अपने माता-पिता तथा अपने सहपाठियों के सामने अपनी बुराई को स्वीकार कर लो। संभव है, लड़के तुम्हे चिढ़ायें। शायद माता-पिता नाराज हों। यह भी संभव है कि विद्यालय में तुम्हें दण्ड भी मिले। इनसे घबराओ मत। इन्हें सत्य का

उन्होंने कहा – "तो बस, आज से डाका डालना छोड़ दो और सच बोला करो।"

"अच्छा जी।" कहकर डाकू ने गुरु का चरण स्पर्श किया और चला गया। अगले दिन गुरु नानकदेव जब अपने भक्तों को उपदेश दे रहे थे तो वह डाकू फिर आया और रोते-सिसकते हुए बोला – "गुरुजी, मैं जानता हूँ कि डाका डालना बुरा है। मैं चाहता हूँ कि डाका न डालूँ, फिर भी यह बुरा कार्य छोड़ना मेरे लिए असंभव हो गया है, क्योंकि मेरी आदत मुझे डाका डालने के लिए विवश कर देती है। मैं क्या करूँ?" यह कहकर डाकू फूट-फूटकर रोने लगा।

"एक उपाय बताऊँ, करोगे?" गुरु ने पूछा।

" डाका डालने के सिवाय मैं कोई भी काम कर सकता हूँ।" डाकू ने दृढ़ता से कहा।

गुरु ने कहा – "जाओ, तुम सारा दिन आदत के अनुसार जो चाहो करो, पर प्रतिदिन शाम को अपने सारे कामों का हाल सच-सच लिखकर हमारी सभा में सुना दिया करो।"

यह काम डाकू को सरल प्रतीत हुआ। उसने ऐसा करना स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन गुरुजी उसकी प्रतीक्षा करते रहे, पर वह न आया। तीसरे दिन भी नहीं, चौथे भी नहीं। जब वह कई महीने बाद आया तो उसकी आँखों में आँसू न थे अपितु उसके होंठों पर खेल रही थी एक दिव्य मुस्कान। उसने प्रणाम करते हुए कहा – "गुरुजी! अब मैं डाकू नहीं रहा। मैं ईमानदार व्यक्ति बन चुका हूँ।"

आध्यात्मिक तथ्यों का विश्लेषण है। आरण्यकों में प्राण-विद्या और अध्यात्म-विद्या का प्रतिपादन है। ब्राह्मण ग्रंथों के समान 'आरण्यक' भी प्रत्येक 'वेद' के लिए पृथक-पृथक हैं।

'उपनिषद्'

'उप और नि' उपसर्ग पूर्वक 'सद्लृ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर 'उपनिषद्' शब्द बनता है। उप–समीप, नि–निष्ठापूर्वक, सद्–बैठना। अतः इसका अर्थ–होगा–तत्त्व-ज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय बैठना। इस तत्त्व-ज्ञान के प्रतिपादन के कारण इन ग्रंथों को भी 'उपनिषद्' कहा जाने लगा।

'उपनिषद्' का अर्थ 'ब्रह्म-विद्या' भी है। 'सद्लृ' धातु (षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु) के तीन अर्थ हैं –**विशरण**– नाश होना–जिससे संसार की बीजभूत अविद्या का नाश होता है। **गति**–पाना या जानना–जिस से संसार की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है। **अवसादन**–शिथिल होना–जिससे मनुष्य के दुःख शिथिल होते हैं। अतः शंकराचार्य ने अविद्या का नाश, दुःख-निरोध और ब्रह्मप्राप्ति – इन तीनों अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना जाता है।

उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ से लेकर दो सौ तक मानी जाती है। लेकिन इनमें से सिर्फ ग्यारह उपनिषदें प्रमुख तथा सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। इनके नाम हैं – ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। इन उपनिषदों पर ही शंकराचार्य ने अपना

भाष्य लिखा है।

प्रत्येक उपनिषद् का किसी न किसी वेद से संबंध माना जाता है। वेदों के पश्चात् आरण्यक ग्रंथों में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा, चिंतन-मनन और स्वानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई थी, उसी का सुव्यवस्थित एवं परिपक्व रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों का दर्शन विविध विरोधी गणों का आपस में समन्वय है। एक ओर उसमें ज्ञान-मार्ग की उपादेयता वर्णित है तो दूसरी ओर कर्म-मार्ग की। एक ओर प्रवृत्ति-मार्ग की प्रधानता है तो दूसरी ओर निवृत्ति-मार्ग की। एक ओर 'सर्वं खलिवदं ब्रह्म' वर्णित है' तो दूसरी ओर द्वैत और त्रैत सिद्धांतों का वर्णन है।

उपनिषदों के अनुसार यज्ञ और पुण्य कार्यों के फल पा लेने पर स्वर्ग से मानव इसी लोक में या इससे भी नीचे आ गिरते हैं। कर्मकांड के द्वारा जिन लोकों की प्राप्ति संभव हैं, उन्हें उपनिषद् तुच्छ बतलाकर ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने की सीख देता है। यही उपनिषद् का विशेष धर्म है।

उपनिषदों की आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए उपासना की योजना प्रस्तुत की गई है। जिस किसी की उपासना मनुष्य करता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है। 'महः' की उपासना से महान्, 'मनः' की उपासना से मानवान् तथा 'नमः' की उपासना से कामनाओं का विजेता बन जाता है। इनमें सबसे बढ़कर है 'ब्रह्म' की उपासना, जिससे उपासक ब्रह्मवान् बन जाता है। मनुष्य को एकमात्र 'ब्रह्म' की उपासना करनी चाहिए। ब्रह्मभाव का स्वरूप है – 'अहं ब्रह्मास्मि' । ब्रह्म का इस रूप में उपासना करने से

21

महान् गुणः त्रुटियों पर विजय पाना

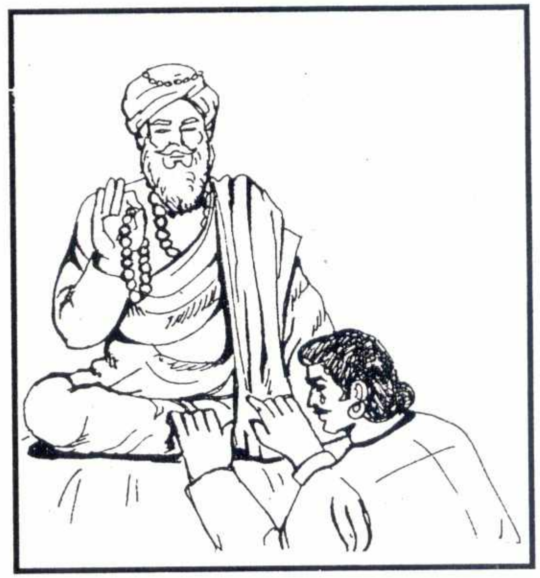

"तुम कौन हो?"

"डाकू।"

"क्या चाहते हो?"

"अपना सुधार। मुझे एक भला और ईमानदार आदमी बना दो गुरुजी!"

यह कहते हुए डाकू गुरु नानक के चरणों पर गिर पड़ा। गुरु नानक ने देखा कि डाकू की आँखों में सचमुच आँसू थे।

इसके विपरीत जो किशोर ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते उनका शरीर, मन और आत्मा निर्बल और निर्जीव से रहते हैं। वे कोई भी बड़ा और कठिन काम नहीं कर सकते। जीवन में सफलता उनसे दूर भागती है। अतः हमें ब्रह्मचर्य का पालन करना चहिए।

लड़कों को लड़कियों और लड़कियों को लड़कों के रूप-सौंदर्य तथा अंगों का वर्णन करना और सुनना, श्रृंगार रस के वर्णनों में रुचि लेना, कामवासना को भड़कानेवाली बात करना, देखना या सुनना, गंदे गीत गाना, प्रेम और प्यार की कथा-कहानियाँ चाव से पढ़ना तथा अश्लील हँसी-मजाक करना — ये ऐसी बातें हैं जो ब्रह्मचर्य आश्रम में लड़के और लड़कियों को त्याग देनी चाहिए।

उपासक स्वयं ब्रह्म (ईश्वर+जीव+प्रकृति) के समष्टि रूप में समझने वाला बन जाता है।

उपनिषद् में आत्मा या परमात्मा का मानव के अभ्युत्थान की दिशा में अतिशय महत्त्व दिखलाया गया है। इसके अनुसार जिस व्यक्ति को परमात्मा ऊँचा उठाना चाहता है, उससे अच्छे काम कराता है और जिन्हें नीचे गिराना चाहता है, उससे बुरे काम कराता है। इस प्रकार कुछ उपनिषद् 'स्वतंत्र कर्ता' के कर्म सिद्धांत को नहीं मानते।

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार हृदय स्वर्ग है। हृदय में ही सब कुछ प्राप्य है। यही सब सत्य कामनाओं का आश्रय है। जिस प्रकार सोने की खान को न पहचानने वाले उसके ऊपर से ही बार-बार जाते हुए भी उसे नहीं परख सकते और ऐसी परिस्थिति में उसका लाभ नहीं उठा पाते, उसी प्रकार सभी लोग प्रतिदिन इस हृदयगत् ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हुए भी उसे (ब्रह्म को) नहीं जान पाते क्योंकि वह रहस्य है।

8

स्वास्थ्य
रोगरहित जीवन

शरीर का रोगरहित होना तथा मन का शांत होना स्वास्थ्य कहलाता है।

स्वस्थ शरीर के लिए आवश्यक है :–

❐ ब्रह्मचर्य ❐ शुद्ध जलवायु ❐ प्राणायाम ❐ व्यायाम ❐ शांत, एकाग्र मन ❐ प्राकृतिक आहार ❐ गहरी नींद।

शरीर की बहुमूल्य धातु अर्थात् वीर्य की रक्षा करना ही मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य से मन पवित्र हो जाता है, आलस्य दूर होता है और कर्मेंद्रियों, ज्ञानेंद्रियों एवं अंतःकरण में शक्ति आती है। ब्रह्मचर्य के पालन से ही स्वामी दयानंद, हनुमान एवं भीष्म पितामह में ओज एवं महान तेज था।

व्यायाम से शरीर के सभी अंग मांसपेशियाँ, धमनियाँ, जोड़ आदि स्वस्थ, सक्रिय एवं लचीले बनते हैं। इससे शरीर में रक्त-संचार ठीक बना रहता है। शारीरिक व्यायाम कई प्रकार के होते हैं, जैसे – दौड़ना, खेलना, दंड-बैठक, तैरना आदि। परंतु सबसे लाभदायक व्यायाम-भ्रमण, योगासन, प्राणायाम एवं शरीर की मालिश हैं।

पदार्थों का सेवन करें। त्वचा से हम गर्मी-सर्दी से शरीर की रक्षा करें और पुरुष स्त्रियों का स्पर्श न करें और स्त्रियाँ पुरुषों का। इस प्रकार जो अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है उसका मन नहीं भटकता।

3. सत्य विद्याओं व श्रेष्ठ पुस्तकों को पढ़ें और पढ़ाएँ।

4. कठोर परिश्रम करें। अनुशासन का पालन करें। गुरुजनों व माता-पिता के आज्ञाकारी बनें।

5. सत्य बोलें, सत्य मानें, सत्य ही करें। लोभ-लालच छोड़कर स्वाध्याय करें।

6. अच्छे मित्रों और लोगों का संग करें।

7. मांस, मद्य, सिगरेट, जुआ, चटपटे पदार्थों का सेवन न करें।

8. सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श अपनाएँ।

ब्रह्मचर्य से अनेक लाभ हैं। यही हमारे जीवन का आधार है। इससे हमारा स्वास्थ्य दृढ़ और उत्तम बनता है। इससे हमारा मन पवित्र और विकसित होता है। इससे हम महान् कार्य करने की योग्यता प्राप्त करते हैं। इससे विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति बढ़ती है। इससे जीवन में इतना उत्साह भर जाता है कि आगे आने वाले वर्षों में मनुष्य बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना धैर्य और वीरता से कर सकता है।

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है – लघु, मध्यम और उत्तम। लघु ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा है – "मैं 24 वर्ष की आयु तक जितेन्द्रिय रहकर विद्याभ्यास करूँगा। मैं अपने वीर्य अर्थात् उत्तम शक्तियों का विकास और रक्षा करता हुआ अपने जीवन में शुभ गुण धारण करूँगा। मैं इस अवस्था में विवाह नहीं करूँगा। उत्तम शिक्षा ग्रहण करूँगा। मैं अपने आचार्य और गुरुजनों के चरणों में रहकर शरीर-मन-आत्मा का विकास करूँगा।"

जो युवक चवालीस (44) वर्ष तक अविवाहित और जितेन्द्रिय रहकर शरीर-मन-आत्मा का विकास करता है वह मध्यम ब्रह्मचारी होता हे। इसी प्रकार उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन अड़तालीस (48) वर्ष तक किया जाता है। ब्रह्मचर्य के लिए साधारण आदर्श निम्नलिखित हैं :

1. युवक कम से कम पच्चीस वर्ष तक और युवतियाँ अठारह वर्ष तक अविवाहित रहें।

2. तपस्या और संयम का जीवन व्यतीत करें। अपनी इन्द्रियों और इच्छाओं को वश में रखें। कानों से बुरी बात न सुनें, अपितु उत्तम उपदेश सुनें। आँखों से सद्ग्रन्थ पढ़ें, संतों के दर्शन करें। भक्ति, देशभक्ति, मानव-प्रेम और वीरता जगाने वाले दृश्य व चित्र देखें। स्त्रियाँ पुरुषों के रूप को और पुरुष स्त्रियों के रूप को वासना की दृष्टि से न देखें। नाक से हम शुद्ध वायु ग्रहण करें न कि इत्र आदि खुशबूदार

योगासनों से रक्त-संचार ठीक रहता है। मन एकाग्र होता है। शरीर सुंदर तथा लचीला बनता है। योगासनों से थकावट नहीं होती; इसलिए ये हर आयुवर्ग के लोगों के लिए लाभदायक हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने गहन चिंतन के बाद योगासनों का आविष्कार किया था। आजकल तो बहुत से रोगों की चिकित्सा के लिए भी योगासन अपनाए जा रहे हैं।

प्राणायाम से इंद्रियों तथा मन में आई त्रुटियाँ दूर होती हैं। प्राणायाम हृदय और फेफड़ों में शुद्ध रक्त-संचार करता है। प्राणायाम करते समय हम लंबे श्वास लेते और छोड़ते हैं। इस कारण फेफड़ों के कोने-कोने से गंदी हवा (कार्बनडायऑक्साइड) बाहर निकल जाती है और शुद्ध वायु हृदय और शरीर को मिलती है। इससे रक्त-प्रवाह तेज होता है, मांसपेशियाँ बलवान् होती हैं और शरीर में स्फूर्ति आती है।

संतुलित शाकाहारी भोजन ही शुद्ध प्राकृतिक आहार है। इसके द्वारा शरीर को सभी आवश्यक तत्त्व प्राप्त होते हैं और शरीर निरोग रहता है। अधिक मिठाइयों, तले हुए खाद्य पदार्थों, मांस, अंडे, शराब आदि के सेवन से अनेक रोग होते और बढ़ जाते हैं।

मांसाहारी भोजन (मांस एवं अंडा) संतुलित भोजन नहीं है। यह शरीर के लिए बहुत हानिकारक हैं, क्योंकि –

1. मनुष्य शरीर की रचना शाकाहारी जीवों की भांति है न कि मांसाहारी जीवों की भाँति।

2. मांसाहारी भोजन स्वाभाविक नहीं। यह बहुत देर से पचता है।
3. मांसाहारी भोजन में रेशा नहीं होता। इस कारण यह पाचन क्रिया के लिए हानिकारक है।
4. यह भोजन तामसिक है। इससे मन में क्रूरता और हिंसा की प्रवृत्ति पैदा होती है।
5. पशुओं का खाना-पीना शुद्ध न होने के कारण उनका मांस कई बार जहरीला भी हो जाता है।
6. मांसाहारी भोजन में कोलेस्ट्राल और वसा बहुत अधिक मात्रा में होते हैं, जो हृदयरोग, मधुमेह, कैंसर आदि भयानक रोगों के मुख्य कारण हैं। अंडें में कोलेस्ट्रोल दो सौ अस्सी मि.ग्रा. होता है जो कि बहुत हानिकारक है।

यह एक थोथी कल्पना है कि मांसाहारी भोजन शरीर को सशक्त बनाता है। योगीराज श्रीकृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, भीष्म पितामह, महारथी अर्जुन, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी जैसे बलवान् और तेजस्वी और कौन होंगे, ये सब शाकाहारी ही तो थे।

संतुलित भोजन में निम्नलिखित तत्त्व होते हैं और वे निम्नलिखित वस्तुओं से प्राप्त किए जा सकते हैं :–

तत्त्व	**प्राप्ति के पदार्थ**
प्रोटीन	सोयाबीन, दालें, दूध, बादाम, कच्चा नारियल आदि।
श्वेत सार	अनाज, चावल, फल, सूखे मेवे, आलू आदि।
लवण	पत्तेदार व अन्य सब्जियाँ व फल आदि।

राजाजी बग्घी पर बैठ गए और कोचवान ने घोड़ों को चाबुक लगाई। घोड़ों के पाँव उठे, पर वे एक कदम भी आगे न बढ़ सके। कोचवान चाबुक पर चाबुक बरसाने लगा और घोड़े एड़ी-चोटी का बल लगाकर आगे बढ़ने का यत्न करने लगे, किन्तु बग्घी टस से मस न हुई। राजा और कोचवान ने पीछे घूमकर देखा तो स्वामीजी एक हाथ से बग्घी के पहिए को पकड़कर खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उन्होंने केवल इतना कहा "आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया ?"

यह ब्रह्मचर्य का एक उदारहण है। इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्मचर्य केवल पहलवानी का नाम है। कई लोग उसे ब्रह्मचारी समझते हैं जिसका विवाह न हुआ हो। वस्तुतः यह ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ है। सात वर्ष की आयु से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक के जीवन काल को ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं जबकि विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर शरीर, मन और बुद्धि का विकास करता है। अतः ब्रह्मचर्य के लिए तीन शर्तें हैं – उत्तम विद्या का अभ्यास, शक्ति-संचय और शारीरिक विकास तथा आत्मिक उन्नति। जो युवक या किशोर इन तीनों शर्तों को पूर्ण करता है वही ब्रह्मचारी है अन्यथा अविवाहित तो चोर-डाकू और गँवार-गुंडे भी हो सकते हैं। उन्हें भी ब्रह्मचारी समझना भूल है। यह इस पवित्र शब्द का अपमान है।

20

महान् गुण : ब्रह्मचर्य पालन

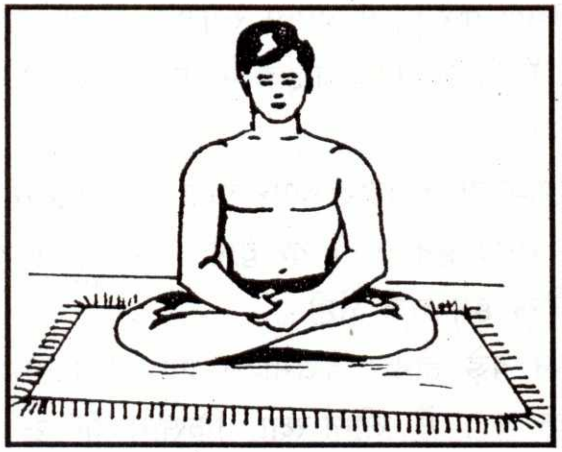

''जो मनुष्य ब्रह्मचर्य को प्राप्त करके भंग नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ और मोक्ष को प्राप्त करते हैं।''
-महर्षि दयानन्द

एक राजा स्वामी दयानन्द के दर्शन करने के लिए घोड़ों की बग्घी पर आये। स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। राजा ने कहा – ''स्वामीजी! आप तो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचर्य का बल हमें भी बताइए।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया–''अवसर पर आपको उत्तर दूँगा।''

वसा	घी, दूध एवं दूध के बने पदार्थ, तेल आदि।
रेशा	फलों और सब्जियों का ऊपरी भाग, मोटा पिसा अनाज आदि।
विटामिन	अधिक मात्रा में हरे पत्तों की सब्जियाँ, पीले रंग के फल, गाजर, अंकुरित आहार, दालें, अनाज, आमला, अमरूद, दूध और धूप।

प्राकृति आहार में रेशों का महत्त्व बहुत होता है। ये सभी तत्व शाकाहारी भोजन से प्राप्त हो सकते हैं।

धूम्रपान और पान मसाले से स्वास्थ्य की हानि

धूम्रपान और पान मसाला स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। मेडिकल सर्वे के अनुसार साल भर में चार लाख लोगों की मृत्यु केवल धूम्रपान से होती हैं। तंबाकू में लगभग चार हजार प्रकार के ज़हरीले रसायन होते हैं। इनमें से निकोटिन सबसे अधिक हानिकारक है। यह हृदय रोग और कैंसर का मुख्य कारण है।

आहार के संबंध में निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए:–

- ❐ भोजन शरीर रक्षा एवं स्वास्थ्य रक्षा का साधन है; केवल स्वाद के लिए ही नहीं खाना चाहिए, अपितु जो स्वास्थ्य के लिए हितकर है उसे खाना चाहिए।
- ❐ हमारा भोजन पौष्टिक तत्वों की दृष्टि से संतुलित होना चाहिए।
- ❐ जहाँ तक हो सके भोजन ताज़ा हो। देर से पड़े हुए भोजन में उसके उतने गुण नहीं रहते।

- दिन में तीन बार से अधिक भोजन न करें। बार-बार खाने से पाचन-शक्ति में विकार आ जाते हैं।
- जो भोजन सूँघने तथा स्वाद में ठीक न हो, वह नहीं खाना चाहिए।
- सप्ताह में एक समय का उपवास या फलाहार स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है।
- भोजन करते समय ध्यान भोजन पर रखें, न कि टी.वी. देखने, अखबार पढ़ने या अन्य कार्य करने में। भोजन पर ध्यान न होने से भोजन के पचने में रुकावट होती हैं
- दोपहर के भोजन के बाद पंद्रह-बीस मिनट बाईं करवट लेटने से खाना जल्दी पचता है।
- अधिक ठंडी या अधिक गर्म कोई भी चीज़ न खाएँ। यह दाँतों तथा पाचन क्रिया के लिए ठीक नहीं।
- भोजन करने से कम से कम एक घंटा पूर्व और एक घंटा बाद पानी पीना चाहिए। पानी सदैव बैठ कर पिएँ।
- भोजन को अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिए। इससे मुँह की लार भोजन के पचाने में सहायक बन जाती है।
- रात को सोने से दो घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिए।
- भोजन शांत मन से करना चाहिए। क्रोध में भोजन करने से शरीर में अम्लता (Acidity) बढ़ जाती है। इसीलिए भोजन करने से पूर्व मन शांत करने के लिए हम मंत्र बोलते हैं।
- जो भी पदार्थ हम खा रहे हैं उसी के स्वाद में पूरा मन लगाते हुए खाना चाहिए। परोसे हुए भोजन में ज्यादा किंतु.

से रहें। निर्धनों और पिछड़े हुए भारतवासियों की यथाशक्ति सहायता करें और उन्हें उन्नति की ओर ले जाएँ।

3. हम देश के संविधान, कानून और नियमों में विश्वास रखें और उनका पालन करें।

4. हम देश-सेवा के लिए अपने-आपको अधिक से अधिक तैयार करें। हम अपना स्वास्थ्य सुधारें, मन लगाकर पढ़ें, एन.सी.सी, स्काउट-गाईड में भाग लेकर देश सेवा का अभ्यास करें।

5. देश-सेवा के लिए हमारे पास तीन साधन हैं – तन, मन और धन। इन तीनों के द्वारा सेवा करने का जो भी अवसर मिले हम चूकें नहीं।

6. हम बड़े होकर देशभक्ति का मोर्चा सँभाल लें – सैनिक के रूप में सीमा-रक्षा, किसान के रूप में अन्न उत्पादन, शिल्पी के रूप में कारखानों में वस्तु-निर्माण, अध्यापक के रूप में शिक्षा-दान, श्रमिक के रूप में निर्माण-कार्य, सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में जन-सेवा, कला-प्रेमी के रूप में संस्कृति की रक्षा, नेता के रूप में राजनीतिक जागृति, डॉक्टर और नर्स के रूप में सेवा-चिकित्सा, वैज्ञानिक के रूप में उपयोगी आविष्कार। अपने सभी कार्य हम निष्ठा और ईमानदारी से करें। यही देशभक्ति है।

7. अनुशासन हमारी सबसे बड़ी देशभक्ति होगी। हम स्वयं देश के बन जाए और सारे देश को अपना बना लें– यही देशभक्ति का मूल मंत्र है।

धरती की गोद में खेले हैं। हम इसी की जलवायु में पले और पनपे हैं। इसी के फल-फूल और अन्न जल खा-पीकर हम बड़े हुए हैं। इसी के पवित्र आँगन में हम खेले-कूदे और हृष्ट-पुष्ट बने हैं। हम यहीं पढ़े-लिखे, हम यहीं जवान हुए। हम यहीं कमाएँगे-खाएँगे। इस प्रकार हमारे सब काम, सब सफलताएँ, सब कामनाएँ भारत के कारण ही हमें प्राप्त हैं। अतः भारत हमारी माँ है – नहीं-नहीं। माँ से भी बढ़कर है। यह स्वर्ग से भी ऊपर है। ऐसे देश को देखकर मैथलीशरण गुप्त ने लिखा है ;

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।''

हम पत्थर दिल नहीं। हम कृतघ्न बालक नहीं। भारत माँ के हजारों उपकारों को हम कभी नहीं भूल सकते। इस देश के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार हैं।

केवल देशभक्ति के गीत गा लेना ही पर्याप्त नहीं। केवल 'भारत माता की जय' बोलने से हमारी देशभक्ति पूर्ण नहीं हो जाती। हमें देश के प्रति अपने कर्त्तव्य भी निभाने के लिए तैयार रहना चाहिए। विद्यार्थी काल में हम लोग देशभक्ति के लिए अनेक कार्य कर सकते हैं, जैसे:

1. हम स्वयं देश के कार्य को अपने स्वार्थों से ऊपर समझें और दूसरों को ऐसी प्रेरणा दें।

2. हम धर्म, जाति, प्रांत, भाषा और सांप्रदायिकता के कारण देश में फूट पैदा न करें, अपितु हम सब भ्रातृ–भाव

परंतु नहीं करनी चाहिए।

- हरे पत्ते वाली सब्जियों, फलों और सलाद का सेवन अधिक करें। जो चीजें छिलके सहित खाई जा सकें, उनके छिलके न उतारें। इनमें लवण और रेशा बहुत होता है।
- फल-सब्जी को खाने से पूर्व अच्छी प्रकार अवश्य धोएँ, क्योंकि उन पर कई प्रकार की दवाइयाँ छिड़की होती हैं।

प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि-मुनियों ने मन के शरीर पर प्रभाव को जानते हुए इस पर बहुत बल दिया था। मन जितना एकाग्र और तनावरहित होगा, शरीर उतना ही स्वस्थ रहेगा। मन का तनाव बढ़ता है – भय, चिंता, क्रोध, झूठ, निराशा आदि से। इसलिए हमें इनसे बचना चाहिए। एकाग्र मन से प्रभु की भक्ति करके ही हम इन बुराइयों से दूर रह सकते हैं।

मेडिकल साइंस ने पिछले कुछ वर्षों के अनुसंधानों के आधार पर पाया है कि मन की तनाव की स्थिति में मस्तिष्क में कई प्रकार के हानिकारक रसायन पैदा होते हैं, जिनमें ऐडरीनेलाइन (Adrenaline) मुख्य है। परंतु जब हम भक्ति करते हैं तो मस्तिष्क में एक प्रकार की तरंग पैदा होती हैं, जिन्हें Alpha Waves कहते हैं। ये तरंगें ऐडरीनेलाइन के प्रभाव को समाप्त कर स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती हैं।

ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट एवं अमरीका के प्रसिद्ध डॉ. औरनिश आदि के अनुसंधानों से भी यह प्रमाणित हो गया है कि प्राकृतिक जीवन शैली से हृदय रोग व कैंसर तक ठीक हो सकते हैं।

9

महर्षि दयानन्द द्वारा रचित लघु ग्रंथ
व्यवहार-भानु

महर्षि दयानन्द द्वारा निर्मित लघुग्रन्थों में व्यवहार-भानु अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इसमें सरलतम भाषा में न्याय-अन्याय, धर्माधर्म आदि बातों पर विचार करते हुए मित्र-पड़ोसी, स्त्री-पुरुष, राजा-प्रजा, अध्यापक-विद्यार्थी आदि का परस्पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह भी बतलाया गया है। धार्मिक तथा व्यावहारिक शिक्षा बहुत जरूरी है । इस सम्बन्ध में महर्षि इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखते हैं – "जब मनुष्य धार्मिक होता है तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और जब अधर्मी होता है तब उसका मान्य और विश्वास मित्र भी नहीं करते।" महर्षि ने उक्त शब्द केवल सिद्धांत रूप में ही नहीं कह दिये, अपितु लोक में परीक्षा करके उन्होंने उक्त सिद्धांत स्थापित किया है। महर्षि लिखते हैं– "मैंने इस संसार में परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो मनुष्य धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है उसको सर्वत्र सुख-लाभ और जो विपरीत वर्त्तता है वह दुखी होकर अपनी हानि करता है।"

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य स्कूल तथा कॉलेजों में आधुनिक उच्च-से-उच्च शिक्षा तो प्राप्त कर लेता है किन्तु धार्मिक तथा व्यावहारिक ज्ञान से शून्य रहता है, जिस कारण उसे जीवन

·19

महान् गुण : देशभक्ति

"जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।"

–महर्षि वाल्मीकि

कवि जयशंकर प्रसाद की स्वर्ण पक्तियां है :

"जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व ! हमारा प्यारा भारतवर्ष।"

हम सब इसी देश की मिट्टी से जन्मे हैं। हम इसी

माता-पिता, बहन-भाई और मित्रो-पड़ोसियों के प्रति विशेष कर्त्तव्य हैं। कुछ हमारे नागरिक कर्त्तव्य भी हैं, कुछ राष्ट्रीय कर्त्तव्य भी हैं जिनका पालन भी करना है।

विद्यार्थियों ! आप लोगों को बड़े-बड़े काम करने हैं। आपको इंजीनियर बनकर नदियों पर बड़े-बड़े पुल बाँधने हैं। डॉक्टर बनकर रोगियों को मौत के मुँह से बचाना है। किसान बनकर खेतों और बागों में पैदावार बढ़ानी है। विद्वान् बनकर लोगों को शिक्षित करना है और देश को प्रगतिशील बनाना है। ये सब कर्त्तव्य तुम्हारे सामने हैं। इन्हें देखो और पहचानो कि कौन-सा कर्त्तव्य तुम अच्छी तरह निभा सकते हो ? फिर उसके पालन में अपना तन-मन-धन लगा दो।

संकल्प – हम अपनी डायरी में अपने कर्त्तव्यों की चार सूचियाँ बनाएँगे :

1. घर में हमारे कर्त्तव्य । 2. विद्यालय में हमारे कर्तव्य। 3. समाज में हमारे कर्त्तव्य । 4. देश में हमारे कर्त्तव्य

इन कर्तव्यों को हम स्वयं निभाएँगे। गुरुजनों व माता-पिता को हमें बार-बार नहीं कहना पड़ेगा।

हम अपने इन तीन कर्त्तव्यों को भी कभी न भुलाएँगे – विद्याध्ययन, शरीर का विकास और चरित्र-निर्माण।

में अनेक प्रकार की हानि उठानी पड़ती है आधुनिक शिक्षणालयों में तो धार्मिक तथा व्यावहारिक शिक्षा की ओर न तो ध्यान ही है, और न और इसके पठन-पाठन का कोई प्रबन्ध वहाँ पर है। इसलिए व्यवहार-भानु जैसे ग्रन्थों का होना बहुत जरूरी है। वे लिखते हैं – "मैं मनुष्यों को उत्तम शिक्षा के लिए सब वेदादि शास्त्र और सत्याचारी विद्वानों की रीति-युक्त इस 'व्यवहार-भानु' ग्रन्थ को बनाकर प्रसिद्ध करता हूँ।"

विद्या की महिमा

न विद्यया विना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम्।
अतो धर्मार्थमोक्षेभ्यो विद्याभ्यासं समाचरेत्।।

अर्थात् विद्या के बिना किसी को निश्चित सुख नहीं हो सकता। विद्या के बिना क्षण पर्यन्त होने वाला सुख वस्तुतः न हुआ जैसा ही है। किसी का सामर्थ्य नहीं कि जो अविद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप को यथावत् जान सके। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि विद्या से यथार्थ ज्ञान होकर यथायोग्य व्यवहार करने-कराने से आप और दूसरों को आनन्दयुक्त करना विद्या का फल है।

विद्या और अविद्या

जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेके अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सके वह विद्या और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उलटा जानकर अपना और पराया अनुपकार कर लेवे, वह अविद्या कहलाती है। विद्या की प्राप्ति और अविद्या-नाश के लिए वर्णोच्चारण से लेकर वेदार्थ-ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य आदि कर्म करने चाहिए।

शिक्षा

जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़कर सदा आनन्दित हो सकें वह शिक्षा कहाती है।

प्रश्न - अपने सन्तानों के लिए माता-पिता और आचार्य क्या-क्या शिक्षा करें ?

उत्तर - शतपथ ब्राह्मण में कहा है – 'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् बच्चे के माता, पिता तथा आचार्य – ये तीन गुरु होते हैं। इसीलिए महर्षि दयानन्द लिखते हैं – 'अहोभाग्य उस मनुष्य का है कि जिसका जन्म धार्मिक विद्वान् माता, पिता और आचार्य के सम्बन्ध में हो क्योंकि इन तीनों की ही शिक्षा से मनुष्य उत्तम होता है। ये अपने सन्तान और विद्यार्थियों को अच्छी भाषा बोलने, खाने, पीने, बैठने, उठने, वस्त्र धारण करने, माता-पिता आदि का मान्य करने, उनके सामने यथेष्टाचारी न होने, विरुद्ध चेष्टा न करने आदि के लिए प्रयत्न से नित्यप्रति उपदेश किया करें। इस प्रकार लड़के और लड़कियों को पाँच व आठ वर्ष की अवस्थापर्यन्त माता-पिता और आचार्य की शिक्षा होनी चाहिए।

प्रश्न - किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए ?

उत्तर - सदैव उत्तम शिक्षा देनी चाहिए। यथा – सदैव सत्य बोलना, चोरी न करना, बड़ों का सम्मान करना, विद्या में मन लगाना इत्यादि। ऐसी शिक्षा कभी न करें कि – तू किसी को मार, गाली दे, इसकी टोपी फेंक दे या कपड़े छीन ले इत्यादि।

प्रश्न - जो माता, पिता, आचार्य और अतिथि अधर्म करें और कराने का उपदेश करें तो मानना चाहिए वा नहीं ?

उत्तर - कदापि नहीं। कुमाता, कुपिता सन्तानों को बुरे

कौन-सा प्रतिकूल ?

4. इस कार्य के लिए मुझमें कितना बल और कितनी योग्यता है? मेरे पास साधन कितने हैं ?

इस संबंध में एक बात का ध्यान रखो कि आपको जो कुछ करना है उसका निश्चय यथासंभव, यथाशक्ति शीघ्र कीजिए। बात को टालिए नहीं। जो व्यक्ति दुविधा में और संकल्प-विकल्प में पड़े रहते हैं वे कुछ नहीं कर पाते और अवसर हाथ से निकल जाता है। विशेषकर कठिन समय आने पर अधिकतर लोग घबरा जाते हैं और समझ नहीं पाते कि क्या करें, क्या न करें। वस्तुतः विपत्ति ही मनुष्य की परीक्षा का समय होता है।

कर्त्तव्य का निश्चय कर लेने पर कर्त्तव्यपालन में देर न करें। निम्नलिखित बातों पर अमल करो तो तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।

1. छोटे से छोटे काम को मन लगाकर अच्छी तरह से करो।

2. स्वार्थ या बदले की भावना से कार्य मत करो।

3. प्रतिक्षण हमारा कुछ न कुछ कर्त्तव्य होता है। सोचना भी कर्त्तव्य है, करना भी, विश्राम भी, कमाना भी, खर्च करना भी ।

4. कर्त्तव्यपालन अपने से शुरू होता है। अपना स्वास्थ्य सुधारना, शिक्षा ग्रहण करना, अनुशासन निभाना आदि, आत्मानुशासन और सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करना,

बताया है। इस प्रकार आप मुझे उलझन में क्यों डाल रहे हैं? मुझे एक बार एक बात बता दीजिए कि मेरा कर्तव्य क्या है ? मैं उसी को करता रहूँगा।''

शिष्य की बात सुनकर ऋषि मुस्कुराये – ''ब्रह्मचारी ! जब जो काम करना चाहिये, तब वही मनुष्य का कर्त्तव्य है। तुम भिन्न-भिन्न समय पर मेरे पास आये। मैंने तुम्हें भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य बताये। अतः भिन्न-भिन्न समय, भिन्न-भिन्न स्थान और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के अनुसार मनुष्य का कर्तव्य बदलता रहता है।''

नये शिष्य की भाँति यदि तुम्हें भी अपने कर्त्तव्य का निश्चय नहीं है तो आज, अभी और इसी क्षण अपने कर्त्तव्य को पहचानो और फिर उसे पूर्ण करने में जुट जाओ। कर्त्तव्य का निश्चय करते समय उसके परिणाम को ध्यान में रखना चाहिए। कठिनाइयों और असुविधाओं को ही मत सोचो। सबसे पहले यह देखो कि तुम्हारी आवश्यकताएँ और जिम्मेदारियाँ क्या हैं और वे कैसे पूरी हो सकती हैं ? फिर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपने-आपसे पूछो :

1. इस समय मैं क्या कदम उठाऊँ तो क्या परिणाम निकलेगा ? वह अच्छा होगा या बुरा ? वह स्थायी होगा या अस्थायी ?

2. इस स्थान पर कौन-सा काम सबसे अच्छा होगा?

3. इस कर्त्तव्य का स्वभाव और इसकी अवस्था कैसी है? इसके साथ कौन-सा व्यवहार अनुकूल सिद्ध होगा और

उपदेश करते हैं कि तेरा शीघ्र विवाह कर देंगे, किसी की चीज को तो उठा लाना, लड़ाई, झगड़ा, खेल, चोरी, जारी मिथ्या भाषण आदि में कुछ भी दोष नहीं तो सन्तान को चाहिए कि ऐसा उपदेश न माने।

प्रश्न - कौन व्यक्ति माता-पिता तथा आचार्य कहलाने के योग्य हैं ?

उत्तर - जो बुरी चेष्टा देखकर लड़कों को न घुड़कते और न दण्ड देते हैं वे क्योंकर माता-पिता और आचार्य नहीं हो सकते हैं क्योंकि जो अपने सामने यथातथा बकने, निर्लज्ज होने, व्यर्थ चेष्टा करने आदि बुरे कामों से हटाकर विद्या आदि शुभ गुणों के लिए उपदेश नहीं करते, न तन-मन-धन लगाकर उत्तम विद्या व्यवहार का सेवन कराकर अपने सन्तानों को सदा श्रेष्ठ करते जाते हैं, वे माता-पिता, आचार्य कहलाकर धन्यवाद के पात्र कभी नहीं हो सकते और जो अपने-अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या, पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण और उनके स्वरूप का यथावत बोध करा और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेद-शास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने, आचार्य के अनुकूल रहने की रीति जना देवें कि जिससे विद्या-प्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों, वे ही माता-पिता और आचार्य कहाते हैं।

प्रश्न - मनुष्य विद्या को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - वर्णोच्चारण, व्यवहार की शुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग और अपने आत्मा की पवित्रता विषयकथा प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याकरण आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों

को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करे और विद्या को सर्वथा साक्षात् करता जाए।

विद्या चार प्रकार से प्राप्त होती है – (1) आगमकाल, (2) स्वाध्यायकाल (3) प्रवचनकाल तथा (4) व्यवहारकाल के द्वारा ।

(1) **आगमकाल** उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर, ध्यान देकर, विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सके अर्थात् ध्यान से सुनें।

(2) **स्वाध्यायकाल** उसको कहते हैं जो पठन-समय में आचार्य के मुख से शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों उनको एकान्त में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक-ठीक हृदय में दृढ़ कर सकें।

(3) **प्रवचनकाल** उसको कहते हैं कि जिससे प्रीति से दूसरों को विद्याओं को पढ़ा सकना।

(4) **व्यवहारकाल** उसको कहते हैं कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है तब यह करना यह न करना इत्यादि रूप में यथावत् आचरण करना। विद्या-प्राप्ति के अन्य चार कर्म इस प्रकार है – श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा साक्षात्कार।

(1) **श्रवण** का अर्थ अध्यापक अथवा गुरु-मुख से पाठ को सुनना है।

(2) **मनन** का अर्थ पठित पाठ पर एकान्त में विचार करना है।

(3) **निदिध्यासन** उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध सुने-विचारे हैं, वे ठीक-ठाक हैं वा नहीं, इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना।

शिष्य ने खूब व्यायाम किया और जी भर नहाया, किंतु उसकी शंका न मिटी। वह दोपहर को फिर ऋषि के सामने उपस्थित हुआ और बोला – '' गुरुदेव! व्यायाम और स्नान मेरा कर्त्तव्य है।''

''नहीं, भोजन तुम्हारा कर्तव्य है।'' ऋषि ने दूसरा उपदेश दिया।

शिष्य ने जी-भर भोजन किया, किन्तु उसकी शंका नहीं मिटीं । वह दिन-भर सोचता रहा और जब उसकी समझ में कुछ न आया तो सायंकाल को जब सब ब्रह्मचारी खेल रहे थे तो वह फिर ऋषि के पास अपना प्रश्न लेकर उपस्थित हुआ – ''गुरुदेव! मेरा कर्तव्य क्या है ?''

''खेलना तुम्हारा कर्तव्य है।'' ऋषि ने तीसरा उपदेश दिया।

शिष्य खूब खेला-कूदा, किन्तु उसकी शंका पहले से भी अधिक गहरी हो गई। भोजन में भी उसका मन न लगा, न संध्यावंदन में। सोचते-सोचते रात हो गई। जब शिष्य से न रहा गया तो वह पुनः प्रश्न लेकर ऋषि के पास पहुँचा – ''गुरुदेव ! मेरा कर्तव्य क्या है?''

''तुम्हारा कर्तव्य है सो जाना।

यह सुन कर नये शिष्य की उलझन अपनी अंतिम सीमा पर पहुंच गई। अतः उसने अपने मन की बात गुरु से कह देना ही उचित समझा – ''गुरुदेव ! मैं जितनी बार आपके पास आया हूँ, आपने उतनी बार मेरा अलग-अलग कर्त्तव्य

18

महान् गुण : कर्त्तव्य पालन

''मेरे दाएँ हाथ में कर्म है, बाएँ हाथ में विजय।''

- अथर्ववेद

"मेरा कर्तव्य क्या है?" नये शिष्य ने प्रातःकाल प्रश्न किया।

"व्यायाम और स्नान तुम्हारा कर्त्तव्य है।" ऋषि ने पहला उपदेश दिया।

(4) **साक्षात्कार** उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुनें-विचारें और निश्चय किये हैं उनको यथावत् ज्ञान-क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना ।

उत्तम विद्यार्थी के लक्षण

काकचेष्टा वकोध्यानं श्वाननिन्द्रा तथैव च ।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिणां पञ्चलक्षणम् ।।

विद्यार्थी को कौवे जैसी चेष्टा वाला अर्थात् अपना लक्ष्य साधने में तत्पर होना चाहिए। जिस प्रकार बगुला एक टाँग पर खड़ा रहकर अपने शिकार की ओर टकटकी लगाकर देखता है वैसे ही विद्यार्थी को अन्य सभी बातों से मन हटाकर ध्यानपूर्वक विद्या पढ़नी चाहिए। विद्यार्थी को कुत्ते के समान थोड़ी नींद वाला, परिमित भोजन करने वाला, गृहत्यागी तथा ब्रह्मचारी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त–

क्षिप्रं विजानाति चिरं श्रृणोति विज्ञाय चार्थ भजते न कामात्।

अर्थात् अच्छा विद्यार्थी अपने पाठ को शीघ्र समझ लेता है तथा देर तक अध्यापक के मुख से ध्यानपूर्वक सुनता रहता है। पढ़े हुए को हृदयंगम करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय-शोकादि दुष्ट गुणों से पृथक् रहता है। विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचर्य अति अनिवार्य है। भीष्मपितामह ब्रह्मचर्य के विषय में कहते है–

आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदहि ।
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप।।

अर्थात् जो व्यक्ति आजीवन ब्रह्मचारी रहता है उसके लिए संसार में कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि

दयानन्द इसीलिए लिखते हैं –

"जो निरन्तर सत्य में रमण, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा, उत्कृष्ट शुभ गुण-स्वभाव-युक्त और रोगरहित, पराक्रम-सहित शरीर, ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदादि और सत्यशास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यास आदि कर्म करते हैं वे अपने सब बुरे कार्य और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति कराने वाले होते हैं और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं।"

पढ़ने-पढ़ाने वालों के दोष

आलस्य, अभिमान, नशा करना, मूढ़ता, चपलता, व्यर्थ इधर -उधर की अण्ड-बण्ड बातें करना, जड़ता, कभी पढ़ना, कभी न पढ़ना, अभिमान, और लोभ-लालच ये सात विद्या के विरोधी दोष हैं। क्योंकि जिनको सुख की इच्छा है उनको विद्या कहाँ और जिनका चित्त विद्या ग्रहण करने-कराने में लगा है उनको विषय संबंधी सुख चैन कहाँ है ? इसलिए सुख के इच्छुक व्यक्ति विद्या को छोड़ दें तथा विद्यार्थी विषय-सुख से अवश्य अलग रहें।

प्रश्न-आचार्य किस रीति से विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करावें और विद्यार्थी लोग कैसे ग्रहण करें ?

उत्तर-आचार्य समाहित होकर ऐसी रीति में विद्या और सुशिक्षा करें कि जिससे उसके आत्मा के भीतर सुनिश्चित अर्थ होकर उत्साह ही बढ़ता जाए। ऐसी चेष्टा व कर्म कभी न करें कि जिसको देख करके विद्यार्थी अधर्मयुक्त हो जावे। इन शब्दों के द्वारा महर्षि ने आचार्य तथा अध्यापकों के सामने बहुत बड़ी जिम्मेदारी रख दी है। जो-जो हमारे उत्तम चरित्र हैं सो-सो करो

काबू पाकर उन नियमों का पालन करना होगा। इसी का नाम आत्मानुशासन है। निःसंदेह डंडे के अनुशासन से आत्मानुशासन श्रेष्ठतर है।

आत्मानुशासन और संयम का अटूट संबंध है। खान-पान, रहन-सहन, विचार-व्यवहार और बोलचाल आदि क्रियाओं पर संयम करके मनुष्य सुखी बन सकता है। इन सब कामों में नियमों का पालन ही संयम है। नियम-पालन के लिए इन्द्रियों पर और अपने मन पर नियंत्रण करना चाहिए, क्योंकि इन दोनों पर संयम की आदत पड़ जाने से मनुष्य हर काम नियम से करना सीख जाता है।

हमें अपनी इन्द्रियों का गुलाम नहीं बनना चाहिए। हमारी इन्द्रियों के स्वाद हमें कठपुतलियों की तरह नचाते हैं। आँख, नाक, कान आदि सुन्दर दृश्य, अच्छी सुगन्धि, मीठा गाना आदि सुनने के लिए हमें अपने वश में करना चाहते हैं। हम अपने असली काम को छोड़कर इन स्वाद की वस्तुओं में पड़ जाते हैं। यही इन्द्रियों की गुलामी है। जो हमें नहीं करनी और निरंतर आत्मानुशासन का अभ्यास करना है जो उन्नति का साधन है।

वे फिर नियम तोड़कर बेकाबू हो जाते हैं।

इसके विपरीत अनुशासन का एक दूसरा प्रकार है – आत्मानुशासन। इसे हम भीतरी अनुशासन कह सकते हैं, क्योंकि इस अनुशासन की प्रेरणा देने वाला बाहर से कोई नहीं आता बल्कि मनुष्य के भीतरी मन से ही अनुशासन की प्रेरणा मिलती है। ऐसा तभी होता है जब हमारा मन इतना सधा हुआ हो कि वह गलत काम करने से एकदम इन्कार कर दे और सदा नियम-पालन की ही प्रेरणा दे। या यों समझों कि आत्मानुशासन का अर्थ है, अपने पर अपने-आप शासन करना। अपने लिए अपने-आप नियम बनाना।

विद्यार्थियो! तुम्हीं बताओ कि तुम्हें कौन-सा अनुशासन पसंद है – बाहरी अनुशासन या आत्मानुशासन ? क्या तुम चाहते हो कि बाहर से आकर कोई तुम्हें हुक्म दे–'पंक्ति से चलो', 'सड़क पर बाईं ओर चलो', 'फूल मत तोड़ो' आदि ? यह तो वैसा ही होगा जैसे दूसरे लोग हम पर शासन करें। क्या हम यह सहन कर सकते कि हमारे मन या शरीर पर कोई दूसरा व्यक्ति शासन करे। कोई दूसरा 'हुक्म' दे तो बैठें। कोई दूसरा 'हुक्म' दे तो पढ़ें। कोई दूसरा हुक्म दे तो खेलें। "क्या बात-बात पर दूसरों की गुलामी और उनका शासन तुम सहन करोगे ?"

यदि नहीं, तो तुम्हें अपना स्वामी स्वयं बनना होगा। अपने लिए स्वयं नियम बनाने होंगे और उन पर स्वयं ही कठोरता से चलना होगा। अपने मन, शरीर और इन्द्रियों पर

और कभी हम भी बुरे काम करें तो उनको कभी मत करो । इत्यादि उत्तम उपदेश करने हारे माता–पिता, आचार्य श्रेष्ठ कहाते हैं।

व्यावहारिक शिक्षा

व्यवहार-भानु के माध्यम से महर्षि ने छात्र-आचार्य, राजा-प्रजा, मित्र-मित्र आदि के परस्पर के व्यवहार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

(1) आचार्य के साथ विद्यार्थियों का व्यवहार -

विद्यार्थी मिथ्या छोड़कर सत्य बोलें, सरल रहें, अभिमान न करें, आज्ञापालन करें, स्तुति करें, नीचे आसन पर बैठें, ऊँचे न बैठें, शान्त रहें, चपलता न करें, आचार्य की ताड़ना पर प्रसन्न रहें। क्रोध कभी न करें, जब कुछ वे पूछें तो हाथ जोड़ के नम्र होकर उत्तर देवें, घमण्ड से न बोलें, जब वे शिक्षा करें ध्यान देकर सुनें, हँसी में न उड़ावें। शरीर और वस्त्र शुद्ध रक्खें, मैले कभी न रक्खें। जो कुछ प्रतिज्ञा करें उसको पूरी करें। जितेन्द्रिय होवें। लम्पटपन व्यभिचार कभी न करें। उत्तमों का सदा मान करें, अपमान कभी न करें। उपकार मान के कृतज्ञ होवें, किसी के अनुपकारी होकर कृतघ्न न होवें। पुरुषार्थी रहें, आलसी कभी न हों। जिस-जिस कर्म से विद्या प्राप्ति हो उस–उसको करते जायें। जो-जो बुरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक आदि विद्या विरोधी हों उनको छोड़कर सदा उत्तम गुणों की कामना करें। बुरे कामों पर क्रोध, विद्याग्रहण में लोभ, सज्जनों में मोह, बुरे कामों में भय, अच्छे काम न होने में शोक करके विद्यादि शुभ गुणों से आत्मा और वीर्य आदि धातुओं की रक्षा से जितेन्द्रिय हो शरीर

का बल सदा बढ़ता जाये।

(2) राजा, प्रजा और इष्ट-मित्रादि के साथ कैसा व्यवहार करें ?

राजपुरुष प्रजा के लिए सुमाता ओर सुपिता के समान और प्रजापुरुष राज-सम्बन्ध में सुसन्तान के सदृश वर्त्तकर परस्पर आनन्द बढ़ावें। राजा को कैसा होना चाहिए, इस विषय में महर्षि लिखते हैं – ''जो विद्या, न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, धैर्य आदि गुणों से युक्त होकर अपने पुत्र के समान प्रजा के पालन में श्रेष्ठों की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड देकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति से युक्त होकर तथा अपनी प्रजा को कराकर आनन्दित रहता और सबको सुख से युक्त करता है, वह राजा कहलाता है।''

इसी प्रकार उत्तम प्रजा के विषय में वे लिखते हैं – ''जैसे पुत्रादि तन, मन, धन से अपने माता-पितादि की सेवा करके उनको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं। वैसे ही प्रजा अनेक प्रकार के धर्मयुक्त व्यवहारों से पदार्थों को सिद्ध करके, राजसभा को कर देकर उसको सदा प्रसन्न रखे, वह प्रजा कहाती है। जो अपना हित और प्रजा का अहित करना चाहे वह न राजा और जो अपना हित और राजा का अहित चाहे वह प्रजा भी नहीं है।''

(3) मित्र, पड़ोसी तथा स्वामी-सेवक का व्यवहार -

मित्र, मित्र के साथ सत्य व्यवहारों के लिए आत्मा के समान प्रीति से वर्तें परन्तु अधर्म के लिए नहीं। पड़ोसी के साथ ऐसा वर्ताव करें जैसा अपने शरीर के लिए करते हैं। वैसे ही मित्रादि के लिए भी कर्म किया करें। स्वामी सेवक के साथ ऐसा वर्तें कि जैसा

17

महान् गुण : अनुशासन

अनुशासन दो प्रकार का होता है – बाहरी और भीतरी। बाहरी अनुशासन दूसरों के द्वारा डंडे के जोर से लाया जाता है। जैसे सर्कस का रिंग मास्टर चाबुक के जोर से शेर को काबू में रखता है, जैसे हाथी का महावत उसे लोहे के तेज अंकुश की मार से वश में करता है। जैसे चरवाहा डंडे के बल पर गाय-भैंस पर अपना नियंत्रण रखता है। जैसे जेल का अधिकारी बंदूक दिखाकर कैदियों को नियम पालन के लिए विवश करता है। जैसे पुलिस बेकाबू भीड़पर लाठीचार्ज करके उस पर काबू पाती है।

बाहरी अनुशासन का आधार भय और दण्ड होता है। जब तक डंडा सिर पर रहता है, तब तक क्या पशु-पक्षी और क्या आदमी, भय से दुबके रहते हैं और नियम का पालन करते हैं। किन्तु ज्यों ही डंडे का भय टला, त्यों ही

4. मार्ग की बाधाएँ तब तंग करती हैं जब उनका पहले से अनुमान न लगा लिया जाये। अतः कार्य आरम्भ करते समय पहले ही सोच लो कि तुम्हारे रास्ते में कौन-सी बाधाएँ आ सकती हैं। उन बाधाओं से बचने के उपाय भी सोच रखो। उन्हें दूर करने के साधन भी जुटाकर रखो, बाधाएँ आएँगी तो उन्हें हटाकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा। उन पर तुम्हारी विजय होगी।

5. एक रूसी कहावत याद रखो – ''जब तुम हल जोतने चलो तो अगल-बगल में कोई चुहिया देखकर उसे पकड़ने में समय न गँवाओ।'' अर्थात् अपने काम में सारा ध्यान लगा दो।

6. परिश्रम में थोड़ी-सी सफलता पाकर ढीले मत पड़ जाओ। तब तक श्रम करते रहो तब तक पूर्ण सफलता प्राप्त न हो।

अन्त में पुरुषार्थ के दो स्वर्ण नियम सदा याद रखो :

(क) भूल किये बिना कोई मनुष्य महान् नहीं बनता।

(ख) घोड़े से गिर-गिरकर ही बहादुर लोग अच्छे घुड़सवार बनते हैं। जो गिरने से डरता है वह सवार नहीं बन सकता।

एक बार यदि सफल न हो तो पुनः उद्योग करो और जीवन में पुरुषार्थ करने का संकल्प लो।

अपने हस्तपादादि अंगों की रक्षा के लिए वर्तते हैं। स्वामी सेवकों के लिए वर्त्तें जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिए होते हैं। कितने उच्च आदर्शमय व्यवहार की शिक्षा यहाँ पर दी गयी है। यदि मित्रों का, पड़ोसियों का तथा स्वामी-सेवकादि का परस्पर इतना उत्तम व्यवहार हो जाए तो व्यर्थ में परस्पर लड़ाई-झगड़े ईर्ष्या-द्वेष, एक-दूसरे की हानि स्वतः समाप्त हो जायेंगे। पूरा समाज आत्मा से युक्त शरीर के समान हो जायेगा।

बालविवाह-निषेध

महर्षि बाल-विवाह के घोर विरोधी हैं। हमारे देश में यह कुप्रथा इतना घर कर गयी थी कि 5–5 वर्ष के बच्चों के, यहाँ तक कि जन्म-पूर्व गर्भावस्था में ही बच्चों के माता-पिता उनके विवाह सम्बन्ध तय कर देते थे। कितना अन्याय था उन बच्चों के साथ ! इस विषय में महर्षि जी लिखते हैं – ''परन्तु यह बात तब होगी कि जब ब्रह्मचर्य से विद्या, शिक्षा-ग्रहण करके युवावस्था में परस्पर परीक्षा करके प्रसन्नतापूर्वक स्वयंवर विवाह ही करें क्योंकि जितना सुख, विद्या और उत्तम प्रजा की हानि बाल्यावस्था में विवाह से होती है उतना ही सुखलाभ ब्रह्मचर्य से शरीर आत्मा की पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीति से विवाह करने से होता है।''

सभा आदि में करणीय व्यवहार

जब सभा में जावें तब दृढ़ निश्चय कर लेवें कि मैं सत्य को जिताऊँ और असत्य को हटाऊँगा। अभिमान न रक्खें। अपने को बड़ा न मानें। अपनी बात का कोई खण्डन करे तो उस पर क्रुद्ध व अप्रसन्न न हों। जो कोई कहे उसके वचन को ध्यान देकर

सुनकर जो उसमें कुछ असत्य भान हो उस अंश का खण्डन अवश्य करें और जो सत्य हो तो प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। बड़ाई-छोटाई न गिनें। व्यर्थ बकवाद न करें। कभी मिथ्या का पक्ष न करें और सत्य को कदापि न छोड़ें। ऐसी रीति में बैठे-उठें कि किसी को बुरा विदित न हो। सर्वहित पर दृष्टि रखें। जिससे सत्य की बढ़ती और असत्य का नाश हो, उसको करें। सज्जनों का संग करें और दुष्टों से अलग रहें। जो-जो प्रतिज्ञा करें वह-वह सत्य से विरुद्ध न हो और उसको सर्वदा यथावत् पूरी करें – इत्यादि सब सभा आदि व्यवहारों में करें।

महर्षि दयानन्द के अनुसार सभा आदि सभी व्यवहारों में इसी प्रकार का विशुद्धाचरण करना चाहिए। सत्य पर वे बहुत बल देते हैं, विशेषकर सभा में जाकर तो कभी भी असत्य भाषण न करना चाहिए। मनु जी ने भी कहा है कि या तो सभा में प्रवेश ही न करें, प्रवेश करें तो वहाँ सदा सत्य ही बोलें। जिस सभा में सभासदों के देखते-देखते सत्य का हनन हो जाता है तो वे सभासद् मृततुल्य मानने चाहिए। उनको महान पाप लगता है। इसी प्रकार पक्षपात, छल-प्रपञ्च, ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्गणों को त्यागकर परस्पर व्यवहार करना चाहिए।

सत्य का व्यवहार

सभी प्रकार के व्यवहारों में महर्षि ने सत्य पर बहुत बल दिया है। आर्यसमाज के दस नियमों में चार नियमों में सत्य का प्रतिपादन उन्होंने किया है। महर्षि लिखते हैं – "मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वथा झूठ-व्यवहारों को छोड़कर सत्य-व्यवहारों को सदा ग्रहण करें। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है–

खिलौना है। यह उनकी भूल है। भाग्य ईश्वर की बनाई हुई कोई वस्तु नहीं अपितु अपने भाग्य का निर्माता स्वयं मनुष्य है। हमारा भाग्य वही है जो फ़ौलादी हृदय, चुस्त हाथ और चौकन्ने मस्तिष्क के रूप में कार्य-प्रवृत्त होता है। भाग्यवादी लोग विधाता का जो लेख बताते हैं, उसे बदल देने की शक्ति तुम्हारे अपने अन्दर विद्यमान है। जब कभी दुर्भाग्य या असफलता तुम्हारे सामने आये, तुम पुरुषार्थ के निम्नलिखित उपाय करो :

1. दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर अपने-आप से कहो – मेरे दो हाथ मजबूत हैं। मेरी टाँगें सलामत हैं। मेरी आँखों में ज्योति है और मेरा शरीर स्वस्थ और बलवान है। जो लोग इस कार्य में सफल हुए हैं वे मुझसे अधिक अच्छे तो नहीं थे। उनमें अधिकांश तो मुझसे भी दुर्बल थे। यदि मुझसे कमजोर व्यक्ति इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकता ? मैं उससे भी अधिक सफल होकर दिखाऊँगा।

2. अपनी असफलता के कारण ढूँढ़ो और उन्हें दूर करो। तुम्हारे प्रयास में जो त्रुटियाँ रह गई थीं, उन्हें दूर करो। इस कार्य में किसी कुशल व्यक्ति की सलाह लो। जो कार्य तुम स्वयं नहीं कर सकते, उसके लिए साथियों-सम्बन्धियों से सहायता माँगो।

3. कार्य की पूरी योजना बनाओ। उसे आरम्भ करके लगन और यत्न से करो।

करो। साथियों से पूछो। अध्यापकों की मदद लो। स्वयं पढ़ो। योग्य विद्यार्थियों से प्रेरणा लो। इस प्रकार तुम अवश्य उत्तीर्ण होगे। संभव है, अगली बार तुम कक्षा में प्रथम आओ।

तुम्हारे पास-पड़ोस में जो सबसे अधिक सफल मनुष्य है उससे पूछो। वह बताएगा कि काम करते हुए मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मैं बहुत काम कर चुका हूँ। मैं तो बस, चींटी की तरह काम में जुटा रहा। मार्ग में बाधाएँ आती रहीं। मैं दुगुने वेग से कदम आगे बढ़ाता हुआ निरन्तर चलता रहा। एक दिन स्वयं मुझे आश्चर्य हुआ कि सहसा मैंने अपना लक्ष्य पा लिया।

यही सच्चा पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ की दृष्टि से लोग तीन प्रकार के होते हैं। पहले लोग वे हैं जो विघ्नों के भय से कार्य आरम्भ ही नहीं करते। वे नीच कहलाते हैं। दूसरे लोग वे हैं, जो जोश में आकर कदम बढ़ा देते हैं परन्तु मार्ग में बाधाएँ देखकर काम को अधूरा ही छोड़ देते हैं, वे मध्यम श्रेणी के लोग होते हैं। तीसरे लोग उत्तम श्रेणी के होते हैं जो सोच-विचार कर कार्य आरम्भ करते हैं, फिर चाहे मार्ग में लाख रुकावटें आएँ, वे उन पर विजय पाते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं और अन्त में सफलता उनके चरण चूमती है।

आलसी और निकम्मे हैं वे लोग, जो कहते हैं हमारे भाग्य में ही दुःख लिखा है। वे समझते हैं, मनुष्य भाग्य का

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्त कामा यत्र तत्सत्यस्यपरमंधानम्।।

–मुण्डक० 3।1।6

अर्थात् सर्वदा सत्य की ही विजय और झूठ की पराजय होती है। इसलिए जिस सत्य से चलकर धार्मिक ऋषि लोग जहाँ सत्य की निधि परमात्मा है उसको प्राप्त होकर आनन्दित हुए थे और अब भी होते हैं, उसका सेवन मनुष्य लोग क्यों न करें ? इसी प्रकार यह कहा गया है कि सत्य से परे कोई धर्म तथा असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है।

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि झूठ से ही उनके कार्य सिद्ध होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सावधान करते हुए महर्षि लिखते हैं – "जो मनुष्य महामूर्ख हैं वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से व्यवहार की सिद्धि होती है परन्तु जब किसी को कोई एक व्यवहार में झूठ समझ ले तो उसकी प्रतिष्ठा और विश्वास सब नष्ट होकर उसके सब व्यवहार नष्ट हो जाते हैं और जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़कर सत्य ही कहते हैं। उनको लाभ करने का नाम धर्म और विपरीत का नाम अधर्म है।"

सत्यासत्य की परीक्षा

सत्य एवं असत्य की परीक्षा के पाँच साधन हैं। इनमें प्रथम ईश्वर, उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या। दूसरा – सृष्टिक्रम। तीसरा – प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण। चौथा–आप्तों का आचार, उपदेश, ग्रन्थ और सिद्धान्त और पाँचवाँ – अपने आत्मा की साक्षी, अनुकूलता, जिज्ञासुता, पवित्रता और विज्ञान।

(1) ईश्वरादि से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो जो

ईश्वर को न्याय आदि गुण, पक्षपात रहित सृष्टि बनाने का कर्म और सत्य, न्याय, दयालुता, परोपकारता आदि स्वभाव और वेदोपदेश से सत्य और धर्म ठहरे, वही सत्य और धर्म है जो असत्य और अधर्म ठहरे वही असत्य अधर्म है।

(2) सृष्टिक्रम उसको कहते हैं जो सृष्टि के गुण-कर्म और स्वभाव से विरुद्ध हो वह मिथ्या और जो अनुकूल हो वह सत्य कहाता है। जैसे कोई कहे कि बिना माँ-बाप के लड़का, कान से देखना, आँख से बोलना आदि बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं। ईसामसीह के बारे में भी प्रसिद्ध है कि वह बिना बाप कुमारी मरियम नामक कन्या से पैदा हुआ था। ऐसा होना सर्वथा असम्भव है, अतः मिथ्या है। इसी प्रकार चित्रों में गणेश जी का सिर हाथी का बनाया जाता है, हनुमान आदि का मुख बन्दर का तथा पूँछ से युक्त चित्र बनाते हैं, इस प्रकार की सभी बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

(3) प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों के आधार जो ठीक रहे वह सत्य तथा जो-जो विरुद्ध ठहरे वह मिथ्या समझनी चाहिए। प्रत्यक्षादि प्रमाण इस प्रकार हैं –

(1) प्रत्यक्ष–नेत्र, श्रोत्र आदि इन्द्रियों का पदार्थ से सम्बन्ध होने पर जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है।

(2) अनुमान – यह प्रत्यक्ष के आधार पर ही होता है। पहले देखी वस्तुओं में कार्य के आधार पर कारण का तथा कारण के आधार पर कार्य का ज्ञान होता अनुमान कहलाता है। यथा–आकाश में बादल (कारण) देखकर वर्षा (कार्य) का अनुमान करना तथा नदी का गदला पानी एवं बाढ़ (कार्य) देखकर भी वर्षा (कारण)

महर्षि बोले – "पुरुषार्थ के लिए पाँच गुण चाहिए – बुद्धि, तेज, बल, उठने की इच्छा और उद्योग। ये गुण जिस पुरुष में हों वह अवश्य सफल होता है।"

इसे साधारण उपदेश मत समझो। यह संसार के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत में अंकित है। इसे हजारों ने अपनाया। लाखों ने इस प्रेरणा से अपनी हार को जीत में बदल दिया। करोड़ों लोग इस आदर्श को अपनाकर उन्नति के शिखर पर जा पहुँचे।

पुरुषार्थ – उन्नति की कुंजी है।

पुरुषार्थ – सफलता की गारंटी है।

पुरुषार्थ – प्रत्येक कमजोरी का अचूक इलाज है।

यदि दुर्भाग्यवश तुम शरीर में दुर्बल हो, तो तुम भी पुरुषार्थ करो। तुम अवश्य बलवान बनोगे। यदि तुम पढ़ाई में कमजोर हो तो आज, अभी और इसी क्षण से पुरुषार्थ के पाँच नियमों का पालन करो। तुम अवश्य योग्य विद्यार्थी बन जाओगे।

यदि तुम वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए हो या अंक कम आए हैं तो निराश मत हो। विद्यालय से मत भागो। माता-पिता के लिए नई समस्याएँ खड़ी मत करो। विद्यालय को मत कोसो। अध्यापकों को दोषी ठहराने का कुप्रयास मत करो। अपितु पुरुषार्थ करो। गत वर्ष पढ़ाई-लिखाई में जो कमी रह गई, इस वर्ष उसे पूरा करके छोड़ो। जिस विषय में तुम कमजोर हो उसमें सबसे अधिक परिश्रम

16

महान् गुण : पुरुषार्थ

पुरुषार्थ क्या है ?

आगे बढ़ते हुए कदम, श्रम में जुटे हुए हाथ और विजय की भावना से भरपूर हृदय – यही सच्चे पुरुषार्थ की पहचान है। इसी की प्रेरणा देते हुए महर्षि वेदव्यास ने युवकों को ललकारा है – "उठो, आलस्य को त्यागो और भले काम में जुट जाओ। मन में दृढ़ संकल्प करो कि कार्य पूर्ण होगा। निश्चय ही वह होकर रहेगा।"

एक शिष्य ने पूछा – "महर्षिवर ! पुरुषार्थ के लिए किन गुणों की आवश्यकता है?"

का अनुमान करना।

(3) **उपमान** - वन में मनुष्य की आकृति वाले किसी प्राणी को देखकर समझना कि यह वनमानुष है।

(4) **शब्द** - सत्योपदेष्टा ऋषि-मुनिं का उपदेश तथा वेद।

(5) **ऐतिह्य-भूतकाल** के पुरुषों की चेष्टा, सृष्टि आदि पदार्थों की कथा, इतिहास आदि।

(6) **अर्थापत्ति** - एक बात सुनकर प्रसंग से दूसरी बात जान लेना; जैसे किसी ने कहा कि मोहन दिन में खाना न खाने पर भी हृष्टपुष्ट है। इससे ज्ञात हुआ कि वह रात्रि में खाता होगा।

(7) **सम्भव** - कारण से कार्य होना आदि।

(8) **अभाव** - किसी पदार्थ की अनुपस्थिति कहीं पर देखकर उसके अभाव का निश्चय करना।

इस प्रकार इन आठ प्रमाणों के आधार पर भी सत्यासत्य जाना जाता है।

(4) **आप्तों के आचार और सिद्धान्त से परीक्षा** करना उसको कहते हैं कि जो-जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, पक्षपातरहित, सबके हितैषी विद्वान् सबके सुख के लिए यत्न करें, वे धार्मिक लोग आप्त कहाते हैं। उनके उपदेश, आचार, ग्रन्थ और सिद्धान्त से जो युक्त हो वह सत्य और जो विपरीत हो वह मिथ्या है।

(5) **आत्मा से परीक्षा** उसको कहते हैं कि जो-जो अपना आत्मा अपने लिए चाहे सो सबके लिए चाहना और जो-जो न चाहे सो-सो किसी के लिए न चाहना। जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा क्रिया में होने को जानने की इच्छा शुद्धभाव

और विद्या के नेत्र से देखकर सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिए ।

धर्म और अधर्म

जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वराज्ञापालन, परोपकाररूप करना धर्म और जो इसके विपरीत वह अधर्म कहलाता है क्योंकि जो सबके अविरुद्ध वह धर्म और जो परस्पर अविरुद्धाचरण सो अधर्म क्योंकर न कहावेगा।

वस्तुतः सत्यभाषणादि कार्य करना ही धर्म है। जो लोग गंगास्नान, उपवास, चौके-चूल्हे की छुआछात आदि को धर्म मान बैठे हैं, वह मिथ्या है। समस्त मानवमात्र का धर्म एक ही हो सकता है। न्याय, दया, सत्यभाषणादि ऐसे कर्म हैं जिनसे कोई भी निषेध नहीं कर सकता। इसके आधार पर ही परस्पर के व्यवहार चल रहे हैं। इसीलिए महाभारत में कहा गया है – 'धर्मो धारयते प्रजाः' अर्थात् इसी प्रकार के श्रेष्ठ गुणों के आधार पर ही यह संसार स्थिर है। ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध, जैन आदि अलग-अलग धर्म न होकर मजहब अथवा सम्प्रदाय हैं। सच्चा धर्म केवल वेद-प्रतिपादित वैदिक धर्म है, क्योंकि वेद सबसे प्राचीन हैं तथा वे किसी भी सम्प्रदाय-विशेष से सम्बन्धित न होकर प्राणिमात्र के लिए हैं।

प्रश्न - मनुष्य का आत्मा सदा धर्म और अधर्म युक्त किस-किस कर्म में होता है।

उत्तर - जब तक मनुष्य सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्वकर्मों के साक्षी परमात्मा से नहीं डरते अर्थात् कोई कर्म ऐसा नहीं है जिसको वह न जानता हो। सत्य, विद्या, सुशिक्षा, सत्पुरुषों

चोटी हमारे आर्यत्व का प्रतीक है। भारत में यवनों ने अपने शासन काल में इतने अत्याचार किए कि उन्होंने करोड़ो लोगों के चोटी, जनेऊ उतरवाकर उनको मुसलमान बना लिया किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी निकले, जिन्होंने मृत्यु को स्वीकार किया किन्तु अपनी चोटी नहीं कटाई न अपना यज्ञोपवीत छोड़ा। ऐसे बलिदानी पुरुषों में हकीकतराय का नाम गौरव पूर्वक लिया जाता है।

चोटी का सन्ध्या में उपयोग - सन्ध्या करते समय शिखाबन्धन का विधान है। गायत्री मंत्र को पढ़कर शिखा के बिखरे बालों को संवार कर उनमें गांठ लगायी जाती है। इसका यह अभिप्राय है कि अब तक चित की वृत्तियां इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं, सन्ध्या में उनको केन्द्रित करने की आवश्यकता है । जिस चोटी की रक्षा हमारे पूर्वज बहुत कष्टों को सहन करके भी करते रहे हैं उसी चोटी को आज हम नाई से स्वयं कटा देते हैं, चोटी रखने में शर्म महसूस करते हैं। यह अत्यन्त लज्जाजनक बात है। जबकि अन्य मजहब वाले दाढ़ी तथा सिर के बाल बहुत ही गर्व से रखते हैं

पहनना ही छोड़ दिया है, जो अच्छी बात नहीं है।

यज्ञोपवीत सबको पहनना चाहिए – आजकल एक दुष्प्रथा यह भी चल पड़ी कि स्त्रियां यज्ञोपवीत धारण नहीं करतीं। उनके बदले में पुरुष ही 6 सूत्रों का यज्ञोपवीत धारण कर लेते हैं। ऐसा करने का कहीं भी विधान नहीं है। हमारे धर्मशास्त्रों में स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों के लिए यज्ञोपवित धारण करने का विधान है। प्राचीन लोग इसीलिए स्त्री-पुरुष सभी यज्ञोपवीत धारण करते थे; शास्त्रों में कहा गया है – 'पुराकल्पेपि नारीणां मौन्जी – बन्धन मिष्यते' अर्थात् प्राचीनकाल में स्त्रियों के यज्ञोपवीत का विधान भी है। इसलिए सभी को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। हमें अपनी संस्कृति के इस पावन प्रतीक की रक्षा दृढ़ होकर करनी चाहिए।

(3) चोटी - भारतीय संस्कृति का तीसरा प्रतीक शिखा अर्थात् चोटी है। सिर के मध्य भाग में कुछ बाल अन्य बालों की अपेक्षा लम्बे छोड़कर बांध दिए जाते हैं । यही चोटी कहलाती है। यह चोटी सिर के बीच में ही क्यों छोड़ी जाती है, इसका कारण यह है कि सिर का वह भाग ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। इसकी रक्षा भी इन बालों से होती है। दूसरी बात यह भी है कि योगी लोग ब्रह्मरन्घ्र में ही अपने प्राणों को स्थिर करके परमात्मा का दर्शन करते हैं, इसलिए भी यह भाग महत्वपूर्ण है।

चोटी से ही व्यक्ति को पहचाना जाता है कि यह व्यक्ति आर्य एवं भारतीय संस्कृति का उपासक है। अन्य मजहब वाले यथा मुसलमान, ईसाई आदि कोई भी चोटी नहीं रखते। इस प्रकार

का संग, उद्योग, जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि शुभगुणों के होने और लाभ के अनुसार व्यय करने से धर्मात्मा होता है और जो इससे विपरीत है वह धर्मात्मा कभी नहीं हो सकता; क्योंकि जो राजा आदि अल्पज्ञ मनुष्यों से डरता और परमेश्वर से भय नहीं करता वह क्योंकर धर्मात्मा हो सकता है ? क्योंकि राजा आदि के सामने बाहर की अधर्मयुक्त चेष्टा करने में तो भय होता है परन्तु आत्मा और मन में बुरी चेष्टा करने में कुछ भी भय नहीं होता क्योंकि ये भीतर का कर्म नहीं जान सकते । इससे आत्मा और मन का नियमन करनेहारा राजा एक आत्मा और दूसरा परमेश्वर ही है, मनुष्य नहीं। और ये जहाँ एकान्त में राजादि मनुष्यों को नहीं देखते वहाँ तो बाहर से भी चोरी आदि दुष्ट कर्म करने में कुछ भी शंका नहीं करते। वैसे भी कोई स्थान या कर्म ऐसा नहीं है जिसको आत्मा और परमात्मा न देखता हो। जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की साक्षी से अनुकूल कर्म करते हैं वे ही धर्मात्मा कहलाते हैं।

धर्मात्मा एवं विद्वान्

महर्षि दयानन्द एक अधार्मिक विद्वान् की अपेक्षा धार्मिक व्यक्ति को श्रेष्ठ समझते हैं, भले ही वह विद्वान् न हो। साथ ही यह भी है कि सभी व्यक्ति विद्वान् नहीं हो सकते जबकि धार्मिक तो सब बन सकते हैं। महर्षि लिखते हैं –

प्रश्न - जो विद्या पढ़ा हो उसमें धार्मिकता न हो तो उसको विद्या का फल होगा या नहीं ?

उत्तर - कभी नहीं, क्योंकि विद्या का फल है कि मनुष्य को धार्मिक अवश्य होना है। जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा

जानकर न किया और बुरा जानकर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है ? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरी जानता हुआ करता और साहूकारी को अच्छी जानकर भी नहीं करता, वैसे ही पढ़कर भी अधर्म को नहीं छोड़ता और धर्म को नहीं करनेहारा मनुष्य है। सभी मनुष्यों के धार्मिक बनने के विषय में महर्षि लिखते हैं – "जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रखते और धर्माचरण किया चाहें तो विद्वानों के संग और अपने आत्मा की पवित्रता और अविरुद्धता से धर्मात्मा अवश्य हो सकता है क्यांकि **सब मनुष्यों को विद्वान् होना तो सम्भव नहीं, परन्तु धार्मिक होना सम्भव सबके लिए है।"**

मन-वाणी-कर्म में एकरूपता

नीतिकारों ने कहा है

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।।

अर्थात् जिसके मन, वाणी तथा कर्म में एक ही प्रकार की बात होती है, वह धर्मात्मा, महात्मा कहलाता है तथा मन-वचन-कर्म में अलग-अलग भाव रखने वाला अधर्मात्मा, दुरात्मा होता है। इसी आशय में महर्षि लिखते हैं – "क्या जब कोई आत्मविरोध अर्थात् आत्मा में कुछ और वाणी में कुछ भिन्न और क्रिया में कुछ और करता है वह अधर्मी और जिसके जैसा आत्मा में वैसा वाणी में और जैसा वाणी में वैसा ही क्रिया में आचरण करता है वह धर्मात्मा है ?"

है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से हमें कई आवश्यक बातों की याद आती है यथा (1) मनुष्य तीन ऋणों में बंधा हुआ है – मातृऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण। इन तीनों ऋणों का स्मरण यज्ञोपवीत के धागों में होता है। (2) संसार में तीन ही सत्ता हैं – ईश्वर, जीव तथा प्रकृति, यज्ञोपवीत इनका प्रतीक भी है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रमों का बोध भी यज्ञोपवीत के तीन धागों से होता है क्योंकि चतुर्थ आश्रम संन्यास है जिसमें सब कुछ छोड़ देना होता है।

यज्ञ का अधिकार - यज्ञोपवीत को पहन कर ही व्यक्ति यज्ञ करने का अधिकारी बन सकता है। यज्ञोपवीत से रहित पुरुष को यज्ञ करने का अधिकारी नहीं है। यज्ञोपवीत पहनते समय यह मंत्र बोला जाता है – यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। यहां पर यज्ञोपवीत को परम पवित्र कहा गया है। यज्ञोपवीत को धारण करने वाला ही पवित्र शुद्ध कार्य करे, यह हमें यज्ञोपवीत सिखलाता है।

यज्ञोपवीत संस्कार - भारतीय संस्कृति में यज्ञोपवीत का इतना महत्त्व माना गया है कि इसके लिए प्राचीन ऋषियों ने अलग से यज्ञोपवीत नामक संस्कार का ही विधान किया हुआ है। ब्राह्मण के बालक का पाचवें वर्ष में, क्षत्रिय का आठवें वर्ष में, तथा वैश्य के बालक का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत का विधान किया जाता है। यदि इस अवधि में उनका यज्ञोपवीत न हो सके तो मनु महाराज के अनुसार उसे एक प्रकार से पतित माना जाता है। लेकिन आजकल अंग्रेजी सभ्यता के कारण मनुष्यों ने यज्ञोपवीत

अग्नि में डालने से अधिक शक्तिशाली होकर अनेक व्यक्तियों के दुःख का कारण बन गयी। इस प्रकार यज्ञ में डाला गया घृत तथा सामग्री सूक्ष्म होकर अनेक रोगों को दूर करता है तथा दूर-दूर तक वायु को शुद्ध कर देता है। इस विषय में डा. ट्रैवकिन (फ्रांस) कहते हैं कि घी को अग्नि में जलाने से अनेक कीटाणु मर जाते हैं।

वृष्टि - यज्ञ के द्वारा बादल उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यज्ञ वृष्टि कराने में भी सहायक होता है। इतना ही नहीं, अतिवृष्टि को भी यज्ञ के द्वारा रोका जा सकता है किन्तु इन कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए यज्ञ कुण्ड में विशेष प्रकार की सामग्री डाली जाती है।

आध्यात्मिक उन्नति - यज्ञ हमारे आत्मा व अन्तकरण को पवित्र करके हमारी आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक बनता है। यज्ञ करने वाले व्यक्ति का जीवन पवित्र हो जाता है।

यज्ञ का इतना महत्व होने के कारण ही प्राचीन काल में बहुत बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे। दैनिक यज्ञ का विधान भी इसीलिए किया गया है। वस्तुतः अग्निहोत्र अथवा यज्ञ उन समस्त शुभ कार्यों का प्रतीक है जो कि लोकोपकार के लिए किए जाते हैं। इसलिए कहा गया है 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् यज्ञ सबसे श्रेष्ठ कर्म है। 'स्वर्ग कामोयजेत' स्वर्ग की कामना रखने वाले व्यक्ति यज्ञ करें।

यज्ञोपवीत - यज्ञोपवीत जनेऊ को कहते हैं। इसमें तीन सूत्र अथवा धागे होते हैं। यह भी भारतीय संस्कृति का एक प्रतीक ही

प्रश्न - मनुष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जितने मनुष्य से भिन्न जातिवाले प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव है – बलवान् से डरना, निर्बल को डराना और पीड़ा कर अर्थात् दूसरे का प्राण तक निकालकर अपना मतलब साध लेना। जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उनको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है। परन्तु जो निर्बलों पर दया, उनका उपकार और निर्बलों को पीड़ा देनेवाले अधर्मी बलवानों से किंचित्मात्र भी भय-शंका न करके इनको परपीड़ा से हटा के निर्बलों की रक्षा तन-मन और धन से सदा करता है, वही मनुष्य-जाति का निजगुण है। क्योंकि जो बुरे कामों के करने में भय और सत्य कामों के करने में किंचित् भी भय, शंका नहीं करते, **वे ही मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं ।**

न्याय और अन्याय

जो पक्षपातरहित सत्याचरण करता है वह न्याय और जो पक्षपात से मिथ्याचरण करता है वह अन्याय कहलाता है। इस प्रकार अधर्म एवं अन्याय की परिभाषा करके सभी को सावधान करते हुए महर्षि कहते हैं – "ध्यान रखो कि सब अधर्मी और स्वार्थी लोगों की लीला ऐसी ही हुआ करती है कि अपने मतलब के लिए अनेक अन्यायरूप कर्म करके अन्य मनुष्यों को ठग लेते हैं। अभाग्य है ऐसे मनुष्यों का कि जिनके आत्मा अविद्या और अधर्मान्धकार में गिर के कदापि सुख को प्राप्त नहीं होते।"

इस प्रकार अविद्या और अधर्मान्धकार को दूर करके असत्यादि व्यवहारों को छोड़कर धर्मात्मा बनकर उत्तम व्यवहार की प्राप्ति के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह पुस्तक बनाई है। महर्षि जी

लिखते हैं – "यथायोग्य व्यवहार किये बिना किसी को सर्वसुख कैसे हो सकता है ? क्या मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफलों को सिद्ध नहीं कर सकता और इसके बिना पशु के समान होकर दुखी नहीं रहता है?" मनुष्यों के दुष्ट-आचरण तथा दुष्ट व्यवहार छुड़ाना महर्षि का प्रबल उद्देश्य प्रतीत होता है। उनकी मान्यता है कि दुष्ट व्यवहार से कभी भी सुख तथा उत्तम व्यवहार से दुःख नहीं हो सकता। वे लिखते हैं – "जो मनुष्य विद्या कम भी जानता हो परन्तु पूर्वोक्त दुष्ट व्यवहारों को छोड़कर, धार्मिक होकर खाने, पीने, बोलने, सुनने, बैठने, लेने, देने आदि व्यवहार सत्य से युक्त करता हो, वह कहीं कभी दुःख को प्राप्त नहीं कर सकता और जो सम्पूर्ण विद्या पढ़कर पूर्वोक्त उत्तम व्यवहारों को छोड़कर दुष्ट कर्मों को करता है वह कभी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि आप अपने लड़के-लड़की, इष्ट-मित्र, अड़ोसी-पड़ोसी और स्वामी-भृत्य आदि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें।

महर्षि ने गवर्गण्ड के रूप में मूर्ख तथा दुष्ट राजा का दृष्टान्त एवं सुनीति के रूप में उत्तम राजा का दृष्टान्त देकर लिखा है कि – "जिस देशस्थ प्राणियों का अभाग्य उदय होता है तब गवर्गण्ड के सदृश स्वार्थी, अधर्मी प्रजा का नाश करनेवाले राजा, धनाढय और खुशामदियों की सभा और उनके समान उपद्रवी राजविद्रोही प्रजा भी होती है और जब जिस देशस्थ प्राणियों का सौभाग्य उदय होने वाला होता है तब सुनिति के समान धार्मिक विद्वान् राजा, पुत्रवत् प्रजा का पालन करनेवाली राज सहित सभा और

जाएं, उसको यज्ञ कहते हैं। 'यज्ञ' शब्द संस्कृत की 'यज' धातु से बना है। इस धातु के ये तीनों अर्थ होते हैं। देवपूजा का अर्थ परमात्मा तथा विद्वानों माता-पिता आदि का सत्कार करना है। संगतिकरण का अर्थ उत्तम कोटि के विद्वान् पुरुषों के साथ मिलना है तथा दान का अर्थ द्रव्य धन आदि का परोपकार की भावना से त्याग है। उक्त पाचों यज्ञ इन ही तीन भावनाओं के प्रतीक हैं। इन यज्ञों के माध्यम से ही उक्त कार्य किए जाते हैं। इन पञ्च महायज्ञों में अग्निहोत्र का स्वरूप एवं लाभ इस प्रकार हैं।

यज्ञ तथा अग्निहोत्र - अग्निहोत्र को हवन भी कहते हैं। भारतीय संस्कृति में हवन का इतना अधिक महत्व है कि शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु, कहीं जाना, घर बनाना आदि प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में यज्ञ किया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि यज्ञ में घृत तथा सामग्री जलकर नष्ट हो जाते हैं ऐसा करने का कोई लाभ नहीं।

यज्ञ के लाभ - वस्तुतः उक्त विचार ऐसे लोग प्रकट करते हैं जिनको यज्ञ के स्वरूप का पता नहीं है। अथवा जो विज्ञान को नहीं समझते। विज्ञान के अनुसार कोई भी पदार्थ जलकर नष्ट नहीं होता – अपितु सूक्ष्म रूप में परिणत होकर पहले से भी अधिक गुणकारक हो जाता है। इसका प्रमाण यह है कि एक मिर्च जिसे एक व्यक्ति खा सकता है, उसे यदि अग्नि में जला दिया जाए तो उससे आस पास के कई व्यक्तियों को छींके आने लगेंगी, उनकी आंखों में पानी बहने लगेगा। स्पष्ट है कि अकेली मिर्च

15

भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक

(यज्ञ, यज्ञोपवीत, चोटी)

प्रतीक का अर्थ है कि जिससे प्रतीति हो या जो प्रतीति कराए। किस की प्रतीति कराए ? अपने से भिन्न किसी अन्य की। इसी भावना से भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक हैं – यज्ञ, यज्ञोपवीत तथा चोटी। भारतीय संस्कृति में इन तीनों का बहुत ही महत्व है। यह कह सकते हैं कि ये तीनों भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। इनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या इस प्रकार है।

(1) यज्ञ- भारतीय संस्कृति में पांच महायज्ञों का विधान किया गया है – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ तथा बलिवैश्वदेव यज्ञ। इन पांचों यज्ञों को प्रतिदिन करने का विधान हमारे शास्त्रों में किया हुआ है। ब्रह्मयज्ञ का अर्थ है सन्ध्या। देवयज्ञ अग्निहोत्र को कहते हैं। माता-पिता की सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है। विद्वान्, परोपकारी साधुसन्तों की सेवा करना अतिथि यज्ञ कहलाता है। वैसे तो इन सभी को महायज्ञ कहा गया है तथा इनमें लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के कृत्य समाविष्ट हैं। तथापि यज्ञ के द्वारा मुख्यतः देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र का ही बोध होता है। यज्ञ शब्द का मूल भाव है कि जिसके द्वारा देवपूजा, संगतिकरण तथा दान में तीनों कार्य किये

धार्मिक पुरुषार्थी पिता के समान राज-प्रबन्धक हो प्रीतियुक्त मंगलकारिणी प्रजा होती है। जहाँ अभाग्योदय वहाँ विपरीत बुद्धि। मनुष्य परस्पर द्रोहादिस्वरूप धर्म से विपरीत दुःख के ही काम करते जाते हैं और जहाँ सौभाग्योदय वहाँ परस्पर उपकार, प्रीति, विद्या, सत्य, धर्म आदि उत्तम कार्य अधर्म से अलग होकर करते रहते हैं। वे सदा आनन्द को प्राप्त करते हैं।''

पण्डित का लक्षण

(1) जिसको जीवात्मा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान है, जो आलस्य को छोड़कर उद्योगी बनकर सदा सुख-दुःखादि को सहन करता है – जो धर्म का नित्य सेवन करने वाला है, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ा अधर्म की ओर न खींच सके, वह पण्डित कहलाता है।

(2) जो सर्वदा प्रशंसनीय कार्यों को करने और निन्दित अधर्मयुक्त कर्मों को कभी न करने वाला, वेद, ईश्वर और धर्म का विरोधी न होकर, परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म में दृढ़ विश्वासी है, वह पण्डित कहलाता है।

(3) जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की इच्छा कभी नहीं करते, किसी पदार्थ के नष्ट भ्रष्ट हो जानेपर शोक नहीं करते और बड़े-से-बड़े दुःख आने पर भी मूढ़ होकर नहीं घबराते वे मनुष्य पण्डित होते हैं।

(4) जिसकी वाणी सब विद्याओं में चलनेवाली है, जो बिना जाने पदार्थों को तर्क से जान लेता है, जो सुनी हुई विद्या को उपस्थित रखता है, वह पण्डित है।

(5) जिसकी सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा

अनुकूल रहती है, जिसकी बुद्धि और क्रिया पढ़ी हुई विद्याओं के अनुसार होती है, जो धार्मिक और श्रेष्ठ पुरुषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्टों को विधि से नष्ट करने वाला है, वह पण्डित है।

मूर्ख के लक्षण

(1) जो किसी विद्या को न पढ़कर और किसी विद्वान् का उपदेश न सुनकर बड़ा घमण्डी होता है, दरिद्र होकर धन सम्बन्धी बड़े–बड़े कामों की इच्छावाला और बिना पुरुषार्थ किए बड़े-बड़े फलों की इच्छा करनेवाला है, वह मूर्ख कहलाता है।

(2) जो बिना बुलाये जहाँ-तहाँ सभा आदि स्थानों में प्रवेश करके सत्कार की चेष्टा करे तथा बिना पूछे ही व्यर्थ में बोलता रहे वह मूर्ख कहाता है।

धी	बुद्धिमान बनना अर्थात् प्रत्येक कर्म को सोच-विचार कर करना और अच्छी बुद्धि को धारण करना।
विद्या	ज्ञान ग्रहण करना ।
सत्य	सच बोलना, सत्य का आचरण करना।
अक्रोध	क्रोध न करना। क्रोध को वश में रखना।

4. धर्म और मत में क्या अन्तर है ?

धर्म मानवमात्र के लिये होता है। यह ईश्वर का बताया हुआ मार्ग है। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा बनाया नहीं होता। इसके उलट मत व्यक्तियों द्वारा चलाई गई विचारधारायें होती हैं!

5. इसका कोई उदाहरण दीजिए ?

वैदिक धर्म किसी विशेष व्यक्ति का बनाया हुआ नहीं है। यह सृष्टि के आरंभ से है। वेद पर आधारित यह मानवता का संदेश देता है। सो यह धर्म है। परन्तु इस्लाम मुहम्मद साहिब द्वारा तथा ईसायत ईसा मसीह द्वारा उनके विचारों के आधार पर आरंभ किया था। हर अनुयायी को उन पर विश्वास लाना आवश्यक है। सो, ये दोनों धर्म नहीं, मत हैं। यह दोनों वैज्ञानिक भी नहीं हैं।

6. धर्म और विज्ञान का क्या संबंध है ?

इन दोनों का आपस में अभिन्न संबंध है। जहाँ धर्म है, वहाँ विज्ञान है। सृष्टि के प्राकृतिक नियमों को विज्ञान कहते हैं। इन नियमों के अनुरूप ही जो कार्य मानव करता है, उसे धर्म कहते हैं। सो दोनों का गहरा संबंध है। जो मत विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं, वे धर्म नहीं हैं।

14

वैदिक प्रश्नोत्तरी

1. धर्म क्या है ?

किसी भी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को उसका धर्म कहते हैं। जैसे अग्नि का धर्म उसकी गर्मी और तेज है। गर्मी और तेज के बिना अग्नि की कोई सत्ता नहीं ।

2. मनुष्य का धर्म क्या है ?

धर्म की परिभाषा के अनुसार मनुष्य का स्वाभाविक गुण मानवता है। यही उसका धर्म है। इसके आचरण के लिये उसे अच्छे कर्म करने चाहिए और अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए ।

3. धर्म के दस लक्षण कौन से हैं ?

महर्षि मनु के अनुसार धर्म के दस लक्षण निम्नलिखित हैं:—

घृति	कठिनाइयों से न घबराना।
क्षमा	शक्ति होते हुए भी दूसरों को माफ करना।
दम	मन को वश में रखना।
अस्तेय	चोरी न करना। मन, वाणी और कर्म से किसी के भी धन का लालच न करना ।
शौच	शरीर, मन और बुद्धि को पवित्र रखना
इन्द्रिय निग्रह	इन्द्रियों (आँख, वाणी, कान, नाक और त्वचा) को अपने वश में रखना और वासनाओं से बचना।

10

स्वामी श्रद्धानन्द

बहुत कम व्यक्ति होते हैं जो देश की जीवन धारा को विकास की ओर मोड़ देते हैं। विपरीत परिस्थितियां, मार्ग की रुकावटें, कठिन संघर्ष और जीवन का बलिदान भी उन्हें अपने ध्येय से विचलित नहीं कर पाता । पराधीन राष्ट्र की अन्धकार पूर्ण घड़ियों में समूचे देश और जाति की बीमार काया में नई स्फूर्ति और कर्म का स्पंदन देने वाले स्वामी श्रद्धानन्द (पूर्व नाम महात्मा मुन्शीराम) उन अमर विभूतियों में से थे जिन्हें कृतज्ञ राष्ट्रयुगों तक अपनी श्रद्धांजलि देता रहेगा।

ग्राम तलवन जिला जालन्धर (पंजाब) में फाल्गुन कृष्णा 13 संवत् 1913 (सन् 1856 ई.) को स्वामी जी का जन्म हुआ। आपके पिता ला. नानकचन्द्र अंग्रेजों के कृपापात्र थे। सम्पन्न खत्री परिवार में इस बालक का नाम मुंशीराम रखा गया। जन्मपत्री के अनुसार 'बृहस्पति' नाम था पर वह कभी व्यवहार में नहीं आ सका। ला. नानकचन्द 'विजिटिंग पुलिस इंस्पेक्टर' थे। परिवार के साथ बालक मुंशीराम को क्रमशः बरेली, बदायूं और वाराणसी रहना पड़ा। मुंशीराम वैभव और अधिकार प्राप्त घर में लाडले पुत्र की तरह पले। व्यसन और उद्दण्डता ऐसे वातावरण में

बच्चों को सहज ही मिल जाती हैं। बांदा, मिर्जापुर, वाराणसी, इलाहाबाद और पुनः बरेली । पिताजी की जहां बदली होती परिवार के साथ मुंशीराम भी उसी शहर में रहते थे। बालक मुंशीराम किशोर अवस्था को पार कर गया । पूजा-पाठ, मौलवी और पण्डितों द्वारा अक्षर अभ्यास इत्यादि की शिक्षा चलती रही लेकिन एक घटना मुंशीराम के जीवन को ऐतिहासिक मोड़ दे गई।

उपासना के नाम पर आडंबर, पूजा के स्थान पर दिखावा तथा धार्मिक सात्विकता की जगह भोग और व्यभिचार को देखकर मुंशीराम अनीश्वरवादी बन गये। श्रावण शुक्ला 14 संवत् 1936 को ऋषि दयानन्द बरेली पधारे। सभा का प्रबन्ध इनके पिता लाला नानक चन्द को ही करना था। पिता ने पुत्र से कहा – बेटा मुंशीराम। एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। कल मेरे साथ चलना, तुम्हारे सब संशय उनका भाषण सुनकर दूर हो जायेंगे, और हुआ भी यही। मुंशीराम के अपने शब्दों में –– 'ऋषिवर ! तुम्हारे सहवास ने मुझे अत्यन्त गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।'

मुंशीराम जी का विवाह संवत् 1934 में जालन्धर के राय सालिगराम की पुत्री शिवदेवी जी के साथ हुआ। आपके दो पुत्र श्री हरिश्चन्द्र तथा श्री इन्द्र एवं पुत्रियां वेदकुमारी और अमृतकला थीं। स्वामी जी सन् 1886 में आर्यसमाज के नियमित सदस्य बनें और कुछ ही वर्षों में आर्यसमाज की सम्पूर्ण गतिविधियों पर छा गये। वह आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बनें

तोड़कर निकल चलीं, पर एक अंग्रेज सैनिक ने पीछे से उनपर वार किया, जिससे महारानी का आधा सिर कट गया। पर वह फिर भी लड़ती रहीं। अब शत्रुओं ने रानी की छाती को छेद दिया। घोड़े से गिरते-गिरते भी महारानी ने अपने सामने वाले सैनिक को मार गिराया। महारानी के मरकर गिरते ही उसके एक सैनिक ने शव को उठाया और पास ही एक महात्मा की कुटिया में ले गया। उसकी पीठ पर बँधे उसके पुत्र को खोला गया और फिर उसी समय चिता बनाकर शव का दाह-कर्म कर दिया गया, जिससे विदेशी सैनिकों के हाथ उस पवित्र शरीर को छूं न सकें।

आज्ञा होगी हम अंग्रेजों का सर्वनाश कर देंगे और भारत को स्वतंत्र बनाएँगे।'

सन् 1856 में पूरे भारत में स्थान-स्थान पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह छिड़ गया। झाँसी में भी महाविद्रोह हुआ और लक्ष्मीबाई ने महारानी के रूप में राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। इस पर जनरल परह्यूरोज़ की कमान में अंग्रेजों ने झाँसी पर आक्रमण कर दिया। तांत्या टोपे ने रानी की सहायता की। यह युद्ध ग्यारह दिन तक चला। जब महारानी को विजय की आशा न रही तो उसने अपने आठ वर्षीय दत्तक पुत्र दामोदर राव को पीठ पर बाँधा और एक हज़ार सैनिकों को साथ लेकर वह अंग्रेज़ों पर टूट पड़ी। कहते हैं, महारानी ने गढ़ की दीवार के ऊपर से – जिसकी ऊँचाई दो मंजिलों जितनी थी – घोड़े सहित छलांग लगाई थी। भयंकर युद्ध हुआ। महारानी ने अपनी वीरता और साहस से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। वह अंग्रेजों की सेना को चीरती हुई बिना कुछ खाए-पिए निरंतर चलती हुए कालपी पहुँची । कालपी झाँसी से एक सौ दो मील की दूरी पर है। अंग्रेज जनरल झाँसी को जीतकर कालपी की ओर बढ़ा। मुट्ठी भर सैनिकों के साथ रानी ने उसका डटकर मुकाबला किया, पर सफल न हो सकी। वहाँ से चलकर महारानी ने तांत्या टोपे और राव साहब के साथ मिलकर फिर पूरे बल के साथ अंग्रेजों पर धावा बोल दिया। भयंकर युद्ध हुआ। महारानी वीरता से लड़ीं पर वह शत्रुओं के बीच में घिर गईं। अपने अपूर्व साहस से वह अंग्रेजों के घेरे को

स्वामी जी को ईश्वर पर अटूट विश्वास था। अतः वह सब कार्य ईश्वर विश्वास से ही करते और प्रभु उन्हें पूर्ण सफलता प्रदान करते। आपने जब महर्षि के अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में पढ़ा कि विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए तो आपने गुरुकुल स्थापना का दृढ़ संकल्प कर लिया। उस समय सबने उनकी इस बात का विरोध किया। परन्तु स्वामी जी की दृढ़ता एवं पवित्र विचारों से प्रभावित होकर 26–11–1898 को आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल स्थापना का प्रस्ताव पास कर दिया और स्वामी जी ने अपने अनथक प्रयत्नों से सन् 1902 में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना कर दी। सर्वप्रथम अपने दोनों सुपुत्रों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। आप ही गुरुकुल के प्रथम आचार्य नियुक्त हुए। आपने अपनी समस्त सम्पत्ति भी गुरुकुल को दान कर दी । लार्ड मैकाले की शरारत भरी शिक्षा पद्धति के उत्तर में गुरुकुल प्रणाली का प्रारम्भ आश्चर्य जनक और गौरवपूर्ण था। काश, हमारे गुरुकुल और उनके व्यवस्थापक इस विद्रोही सन्त की भावना को समझ पाते ! अंग्रेज सरकार गुरुकुल को एक राजद्रोही संस्था समझती थी।

महर्षि स्वामी दयानन्द के उपदेश एवं उनके ईश्वर विश्वास ने उनमें अद्भुत साहस एवं निर्भीकता उत्पन्न कर दी थी। उनका सारा जीवन उनकी निर्भीकता का परिचय देता है।

आर्यसमाज वर्ण व्यवस्था को जन्म से नहीं अपितु गुण, कर्म और स्वभाव से मानता है। इस सिद्धान्त के अनुसार महात्माजी ने अपनी अमृतकला का विवाह डा. सुखदेव जी एवं तत्पश्चात् अपनी दूसरी सुपुत्री तथा दोनों सुपुत्रों के विवाह भी जात-पात के बन्धन

तोड़कर किये थे जिसके कारण आपके सब सम्बन्धी एवं मित्र आप से रुष्ट हो गये थे और आपका बहिष्कार भी किया था परन्तु महात्माजी उन से भयभीत नहीं हुए। सन् 1907 में आपने संन्यास ग्रहण किया और महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बने।

अंग्रेज आर्यसमाज की उन्नति को देखकर इसे एक विद्रोही संस्था समझने लग गये थे। इसी कारण 1907 में आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय को माण्डले जेल भेज दिया। आर्यसमाज की सदस्यता से लालाजी का नाम काटने पर महात्मा मुंशीराम जी ने डंके की चोट से कहा था कि लालाजी आर्यसमाज के सदस्य हैं और आर्यसमाज लालाजी का है।

इसी प्रकार सन् 1909 में पटियाला दरबार ने भी आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था घोषित किया और आर्यसमाज के सब सदस्यों को पकड़ लिया गया, उनके घरों की तलाशी ली गई और आर्यसमाज मन्दिरों पर कब्जा कर लिया। महात्मा मुंशीराम जी पटियाला गये और अभियोग वापस करवाकर सब भाइयों को मुक्त करा दिया। इसी प्रकार गढ़वाल में दुर्भिक्ष पीड़ित भाइयों की सहायतार्थ गुरुकुल के ब्रह्मचारियों सहित वहां पहुंचे और उनकी सहायता की। उन दिनों आपके पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' में किसी स्वयंसवेक का लेख गढ़वालियों की सामाजिक कुप्रथाओं एवं कुरीतियों के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ। गढ़वालियों ने स्वामी जी का बहिष्कार करने के हेतु गढ़वाल की राजधानी में एक सभा का आयोजन किया। आपके कई मित्रों ने कहा कि आपका जीवन संकट में है अतः उन्हें गढ़वाल से चले जाने का परामर्श दिया। परन्तु स्वामी जी निश्चित समय से 15 मिनट पूर्व सभापति के

कारण बना। मरने से पहले उन्होंने दामोदरराव नामक बालक को गोद ले लिया था।

उस समय भारत पर अंग्रेजों का राज्य था। महाराज गंगाधरराव की मृत्यु होते ही अंग्रेजों ने झाँसी को अपने राज्य में मिला लिया और उसकी रक्षा के लिए सेना भी रख दी। महारानी लक्ष्मीबाई को पाँच हजार रुपये मासिक पेंशन की घोषणा कर दी गई। इस अन्याय के विरोध में महारानी ने बहुत अपीलें कीं, पर सुनवाई न हुई।

उन दिनों अंग्रेजों ने अपनी नीति से कई राज्य हड़प लिए। सतारा, नागपुर, मैसूर, कर्नाटक और महाराष्ट्र के राजाओं पर कई दोष मढ़कर उन्हें राजगद्दी से उतार दिया। पेशवा द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर उनके दत्तक पुत्रों नाना साहब और राव साहब को एक पैसा भी पेंशन देना स्वीकार नहीं किया गया। इस पर जो-जो राजा अंग्रेजों के अन्याय के शिकार हुए थे, वे सब के सब एक-एक करके संगठित होने लगे।

भारतीय सैनिकों में भी असंतोष था। कारण यह था कि सैनिकों को जो कारतूस मिलते थे, उन पर चमड़े का गोमांस का ढकना लगा होता था, जिसे उन्हें मुँह से काटना पड़ता था। ब्राह्मण सैनिक मंगल पांडे को इसका खुलकर विरोध करने पर मृत्यु दंड दिया गया। इस पर सेना में विद्रोह फैल गया। भारतीय सैनिक संगठन की माला में पिरोए जाने लगे। कमल का फूल और रोटी इनका संकेत चिन्ह था। सैनिकों ने प्रतिज्ञा की 'जब

13

महापुरुषों के जीवन–चरित्र

महारानी लक्ष्मीबाई

मातृभूमि का मस्तक ऊँचा करने वाली भारत की वीरांगनाओं में महारानी लक्ष्मीबाई का नाम विशेष महत्त्व रखता है। उसका बचपन का नाम मनुबाई था। मनु के पिता मोरोपंत और माता भागीरथी धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे। बचपन में बहुत चचल और नटखट होने के कारण मनु को छबीली कहा जाने लगा था। उसका बचपन पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना जी और रावसाहब के साथ बीता। मनु उनके साथ घुड़सवारी करती शिकार खेलने जाती और नकली युद्ध किया करती थी।

इस साहसी बाला का विवाह झाँसी के महाराज गंगाधर राव के साथ हुआ। विवाह के बाद इसका नाम लक्ष्मीबाई रखा गया। कुछ वर्ष पश्चात् लक्ष्मीबाई ने पुत्र को जन्म दिया, पर वह बालक सिर्फ तीन मास तक जीवित रहकर चल बसा। गंगाधरराव पुत्र की मृत्यु से बहुत दुखी हुए और अंत में यही दुःख उनकी मृत्यु का

आसन के समीप मण्डप में जा बैठे। आपकी शान्त मूर्ति का दर्शन करते ही गढ़वाली भाइयों का क्रोध शान्त हो गया।

30 मार्च 1919 को रोलट एक्ट के बलात् थोपे जाने के विरुद्ध दिल्ली में 40 हजार व्यक्तियों का एक विशाल जुलूस निकाला गया, चांदनी चौक के घण्टाघर के समीप निहत्थी जनता पर आक्रमण के लिए जब सैनिक तैयार हुए तो आप आगे बढ़कर गोरखा सैनिकों के सामने छाती तानकर खड़े हो गये और कहा, "जनता पर गोली चलाने से पूर्व मेरी छाती में गोली मारो।" इस गम्भीर स्थिति को देखकर अधिकारियों ने गोली चलाने का आदेश वापस ले लिया।

आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के भारी समर्थक थे। इससे प्रभावित होकर 4 अप्रैल 1919 को आपका व्यांख्यान दिल्ली की ऐतिहासिक जामामस्जिद के मंच से कराया जो आपने वेदमन्त्र से प्रारम्भ किया और शान्तिपाठ के साथ समाप्त किया। हजारों हिन्दू-मुस्लिम आपका भाषण सुनने के लिए वहां उपस्थित थे।

स्वामी श्रद्धानन्द अग्निपुत्र थे। विपरीत परिस्थितियों में राह बनाना आपका स्वभाव था। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में अमृतसर अधिवेशन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस अधिवेशन से मानो तिलक युग का अवसान और गांधी युग का उदय हुआ। जलियांवाला काण्ड के बाद समूचे देश में विशेष रूप से पंजाब में जो दमन चक्र चला, उसे देखते हुए केवल स्वामी श्रद्धानन्द ही थे जो उस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बने। राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा के मंच से स्वामी श्रद्धानन्द ही पहले स्वागताध्यक्ष थे जिन्होंने अपना भाषण हिन्दी में दिया। पराधीन राष्ट्र में इन जैसे स्वाधीनचेता

युगपुरुष कम ही होते हैं। सन् 1923–24 में सार्वदेशिक सभा के प्रधान के रूप में भी स्वामी जी का कार्य सराहनीय था।

10 दिसम्बर 1922 का दिन अविस्मरणीय है। स्वामी जी ने अमृतसर में अकाल तख्त से भाषण दिया और गुरु के बाग में सिक्खों के साथ गिरफ्तार हुए, मियांवाली जेल में कारावास की सजा भोगी। हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख सभी स्वामी जी को समान रूप से प्रिय थे। दलितोद्धार की दिशा में किया गया आपका कार्य अद्वितीय है। कांग्रेस मंच से स्वामी जी के ये शब्द अमर हैं–

'आज से वे साढ़े छः करोड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे अपितु हमारे भाई-बहिन हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कन्धे से कन्धा जोड़ेंगे और हम सब एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे।' इस पर महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा – 'स्वागत समिति के अध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द जी का भाषण उच्चता, पवित्रता, गम्भीरता और सच्चाई का नमूना था।' महात्मा गांधी के उपरान्त उस समय केवल स्वामी श्रद्धानन्द थे जो जन-नेता के रूप में आदरणीय रहे। पं0 मदन मोहन मालवीय, ला. लाजपत राय, पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्रीमती सरोजनी नायडू, हकीम अजमल खां, डॉ. अन्सारी, श्री सी0एफ0 एण्ड्रूज आदि तत्कालीन सभी राजनैतिक एवं सामाजिक नेतागण स्वामी जी को पूज्य भाव से मानते थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि पं0 मोतीलाल नेहरू और स्वामी श्रद्धानन्द इलाहाबाद में कालेज में सहपाठी थे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रिटिश सरकार की दृष्टि

गुरु गोविंद सिंह महान् कवि थे। उनकी वाणी 'दशम ग्रंथ' में संकलित है। यह ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखा गया है। केवल इसका 'जफर नामा' भाग फारसी में है।

इस देश की राष्ट्रभाषा होने की पात्र हिंदी है – इस तथ्य को पहले गुरु गोविंद सिंह ने समझा और अपना मुख्य नारा 'वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह' हिंदी में लगवाया। बृजभाषा या पंजाबी में नहीं। धर्मयुद्ध के प्रति वे कितने समर्पित थे इसका अनुमान उनके निम्नांकित सवैये को देखकर लगाया जा सकता है –

देहि शिवा वर मोहि इहै शुभ कर्मन से कबहुँ न टरूँ।
न डरों अरि से जब जाय लरौं, निश्चय कर अपनी जीत करूँ।
अरू सिक्खऊँ, अपने मन को, इहि लालच तव गुन को उचरौं।
जब आव की औध निदान बने अतिसय रन में तब जूझ मरौं।

रहा। जिस सरहिंद में नवाब ने साहबजादों को दीवार में चिनवाया था वहां की उसने ईंट से ईंट बजा दी। पकड़े जाने पर इस वीर के शरीर को गर्म किए हुए चिमटों से नोच-नोचकर इसे शहीद किया गया।

गुरुजी भी एक पठान की तलवार का धोखे से शिकार हुए। घाव ठीक होने लगा था तभी एक धनुष पर दूसरों से चिल्ला न चढ़ते हुए देखकर जोश में आ गए। धनुष पर चिल्ला तो चढ़ गया, परंतु इस प्रयत्न में उस घाव के टाँके टूट गए और उनका निधन हो गया।

गुरु गोविंद सिंह एक युग प्रर्वतक महापुरुष थे। उन्होंने गुरुनानक देव जी द्वारा संस्थापित आध्यात्मिक संत पंथ को देशभक्ति का मंत्र देकर एक सबल सैन्य शक्ति में परिवर्तित कर दिया। गुरुजी अपने आपको सदा अकाल पुरुष का दास कहते थे।

मैं हूं परम पुरुष को दासा, देखन आयो जगत् तमासा।
जो हमको परमेश्वर उचरहीं, ते नर नरक कुण्ड में परहीं।।

देश-प्रेम गुरुजी में कूट-कूट कर भरा हुआ था। चारों बेटों के बलिदान हो जाने पर भी आप जरा भी विचलित नहीं हुए। माता सुंदरी के इस प्रश्न पर कि चारों पुत्र कहाँ हैं, उन्होंने संगत की और संकेत करते हुए कहा था –

इन पुत्रन के कारने, वार दिये सुत चार।
चार मुए तो क्या हुआ, जीवत कई हजार।

में वे व्यक्ति जो भारत की एकता, अखण्डता एवं स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते थे, शूल की तरह खटकते थे। जातीय एकता एवं राष्ट्रीय अखण्डता के पुजारी स्वामी श्रद्धानन्द जी को ब्रिटिश सरकार ने कभी सहन नहीं किया। 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का उन्होंने अनुसरण किया, साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया और अन्त में यही साम्प्रदायिकता स्वामी जी की हत्या का मूल कारण बनी।

23 दिसम्बर 1926 का दिन भारत के इतिहास में पीड़ा और क्षोभ का दिन है। वर्षों के परिश्रम और थकान ने स्वामी श्रद्धानन्द को अस्वस्थ बना दिया। देश के लाखों व्यक्ति स्वामी जी के स्वस्थ होने की कामना कर रहे थे। इसी दिन एक धर्मान्ध व्यक्ति 'अब्दुल रशीद' ने स्वामीजी को गोलियों का निशाना बनाया। स्वामीजी के इस बलिदान की खबर सुनकर देश का जनमानस सौ–सौ आंसू रो उठा। राष्ट्र नायक पण्डित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में –

"1926 के अन्त में यह वर्ष एक भारी दुःखद दुर्घटना से सर्वत्र अन्धकारमय हो गया। इस दुर्घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष रोष व घृणा से कांप उठा। इस घटना से पता चलता है कि साम्प्रदायिक जोश हम लोगों को कितना नीचे गिरा देता है। वृद्धावस्था में भी उनकी उन्नत सीधी आकृति तथा संन्यासी वेश में उच्च भव्य मूर्ति, लम्बा कद, शाहाना शक्ल – इस सजीव मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूँ। प्रायः वह तस्वीर मेरी आंखों के सामने आ जाती है।"

डॉ. गंगाप्रसाद

11

स्वामी दयानन्द के जीवन की मुख्य घटनायें

यों तो ऋषि दयानन्द का सारा जीवन विचित्र और विलक्षण घटनाओं से भरा हुआ है किन्तु फिर भी यहां पर कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है।

''कैद से छुड़ाने आया हूँ''

अनूप शहर की घटना है। स्वामी जी के स्पष्ट उपदेश से अप्रसन्न होकर एक दुष्ट पुरुष ने स्वामी जी के पास आकर नम्रता प्रदर्शित करते हुए एक पान का बीड़ा स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने लेकर उसे मुंह में रख लिया। मुंह में रखते ही उन्हें मालूम हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। बस्ती और न्योली क्रिया करके उन्होंने उसके प्रभाव को नष्ट कर दिया। जब यह हाल वहां के मजिस्ट्रेट सय्यद मुहम्मद को मालूम हुआ तो उसने उस दुष्ट व्यक्ति को पकड़कर हवालात में रख दिया और जब वह स्वयं स्वामी जी के पास अपनी कारगुजारी प्रकट करने आया तो स्वामी जी ने अप्रसन्नता प्रकट करके उसे छुड़वा दिया और कहा कि "मैं दुनिया को कैद कराने नहीं, किंतु कैद से छुड़ाने आया हूं।"

सत्य पर अटल

एक दिन बरेली में स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे व्याख्यान में नगर के गणमान्य पुरुष और बड़े-बड़े राजकर्मचारी कमिश्नर

शूरवीर की पहचान धर्म की रक्षा हेतु लड़ने से होती है। शरीर का अंग-अंग कट जाने पर भी वह युद्ध-क्षेत्र से नहीं भागता। अपने संकल्प एवं क्षमता पर उन्हें इतना भरोसा था कि कहा करते थे –

भेड़ों को मैं शेर बनाऊँ, राजन के संग जंग लड़ाऊँ।
भूप गरीबन को कहलाऊँ, चिड़िया से मैं बाज मरवाऊँ।
सवा लाख से एक लड़ाऊँ, तबे गोविन्द सिंह नाम कहाऊँ।।

अपनी मुट्ठी भर किंतु बलिदानी खालसा सेना के सहारे वे शाही सेना को नाकों चने चबवाते रहे। एक दिन मुगल सूबेदारों में से सरहिंद के नवाब ने गुरु जी पर कीरतपुर में हमला कर दिया और फिर आनंदपुर साहब जो खालसा पंथ की जन्मभूमि तथा कलगीधर की राजधानी था उसे घेर लिया। इस युद्ध में अनेक साथियों के साथ गुरुजी के दो बड़े पुत्र शहीद हो गए। उनके अन्य दो छोटे पुत्र एक विश्वासी ब्राह्मण की गद्दारी से कैद कर लिए गए और सरहिंद में दीवार में चिनवा दिए गए।

उस समय दक्षिण में हिंदुत्व की रक्षा करने वाले छत्रपति शिवाजी का देहांत हो चुका था। गुरुजी उनके पुत्र शंभाजी से मिलकर मुगल साम्राज्य का अंत करना चाहते थे। अतः उन्होंने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने पुत्र में पिता के गुणों का अभाव देखा। निराश होकर जब वे लौट रहे थे तो राजस्थान में उनकी भेंट बंदा बैरागी के साथ हुई। यह वीर गुरुजी की प्रेरणा पाकर पंजाब आया और कई वर्षों तक मुगल सेनाओं से लड़ता

यह सुनकर पंडित लोग कश्मीर लौट गए और जैसा गुरु जी ने कहा था औरंगजेब के पास वैसे ही कहला भेजा। इसी दिए हुए वचन के कारण गुरु तेगबहादुर जी धर्म की रक्षा के लिए दिल्ली में शहीद हो गए। गुरु जी के बलिदान ने हिंदुओं में धर्मरक्षा की भावना को और भी मजबूत कर दिया।

पिताजी की मृत्यु के बाद गोविंदराय ने गुरुगद्दी को सँभाला और दसवें गुरु बने। गुरुगद्दी सँभालने के बाद गोविंदराय ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाने के लिए हेमकुंड (गंगोत्री की ओर) पर कठोर तपस्या की। फिर देश को क्षात्रशक्ति से संपन्न कराने के लिए उन्होने खालसा पंथ की स्थापना की। अपना नाम भी गोविंदराय के स्थान पर गोविंद सिंह किया तथा खालसा पंथ में दीक्षित होने वाले प्रत्येक शिष्य के नाम के साथ सिंह लगाया। महिलाओं के नाम के पीछे उन्होंने कौर लगाया। उन्होंने इस प्रकार अपने प्रत्येक अनुयायी के लिए पंच ककार की अनिवार्यता घोषित की। ये पंच ककार इस प्रकार हैं – केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण। एक प्रकार से यह खालसा सेना की चौबीसों घंटे धारण की जाने वाली वर्दी थी। उन्होंने 'वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह' यह युद्ध का नारा तथा 'सत् श्री अकाल' यह युद्धकालीन अभिवादन नियत किया। खालसा सैनिकों को उन्होंने यह आदर्श दिया –

सूरा सो पहचानिये, लड़े दीन के हेत।
पुर्जा पुर्जा कट मरे, कबहुँ न छाड़े खेत।

आदि उपस्थित थे। व्याख्यान में ईसाईमत का खूब खण्डन किया गया। दूसरे दिन के व्याख्यान से पूर्व उनसे कहा गया कि आप इतना खण्डन न करें इससे उच्च राजकर्मचारी अप्रसन्न होंगे। दूसरे दिन के व्याख्यान में कमिश्नर आदि सभी उच्च राजकर्मचारी उपस्थित थे। स्वामी जी ने गरज कर कहा –

"लोग कहते हैं कि असत्य का खण्डन न कीजिए। पर चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जाय हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसी को कहते हैं सत्य पर अटल पर विश्वास।

मातृ-शक्ति का सम्मान

एक दिन कतिपय सज्जनों के साथ उदयपुर में स्वामी जी भ्रमण करने जा रहे थे। मार्ग में कुछ बालक खेल रहे थे, उनमें एक बालिका भी थी। स्वामी जी ने उसे देखकर सिर झुका दिया। पूछने पर प्रकट किया कि "यह मातृ-शक्ति है जिसने हम सबको जन्म दिया है।" इस प्रकार सम्मान का भाव स्त्री जाति के प्रति स्वामी जी का था और वह स्त्री जाति को समाज में उच्च स्थान दिलवाना चाहते थे।

अधर्म की बात मत मानो

उदयपुर की एक घटना है कि स्वामी जी ने महाराणा सज्जन सिंह जी उदयपुर नरेश को मनुस्मृति का पाठ पढ़ाते हुए कहा कि "यदि कोई अधिकारी धर्मपूर्वक आज्ञा दे तभी उसका पालन करना चाहिए। अधर्म की बात न माननी चाहिए" इस पर सरदारगढ़ के ठाकुर मोहन सिंह जी ने कहा कि महाराणा हमारे राजा हैं यदि इनकी कोई बात हम अधर्मयुक्त बतलाकर न मानें तो ये हमारा राज छीन लें। इस पर स्वामी जी ने कहा कि –

"धर्महीन हो जाने से और अधर्म के काम करके अन्न खाने से तो भीख मांगकर पेट का पालन करना अच्छा है।"

12

महापुरुषों के जीवन–चरित्र
गुरु गोविंद सिंह

श्री गुरु गोविंद सिह का जन्म बिहार प्रदेश के पटना शहर में हुआ था। इसके पिता श्री गुरु तेगबहादुर थे, माता का नाम गुजरी था। माता-पिता ने इनका नाम गोविंदराय रखा था।

गोविंदराय का पालन-पोषण उनकी माता की देखरेख में पटना में ही हुआ। गुरुजी उन दिनों आसाम आदि में धर्म-प्रचार के अभियान पर गए हुए थे। पटना में उनके जन्मस्थान पर भव्य गुरुद्वारा बना हुआ है। इस गुरुद्वारे को गुरुद्वारा पटना साहब तथा हर मंदिर साहब कहा जाता है।

गोविंद राय बचपन से ही एक निडर व साहसी व्यक्ति थे। छोटी आयु में ही वे बालकों की छोटी-छोटी टोलियाँ बनाकर युद्ध आदि का अभ्यास किया करते थे। नौका खेना, कुश्ती लड़ना इत्यादि इनके प्रिय खेल थे। इनकी निडरता का पता इनके

बाल्यकाल की एक घटना से साफ मिलता है। एक बार पटना से होकर नवाब की सवारी जा रही थी। इन्हें एक ओर हटकर नवाब को सलाम करने को कहा गया। इन्होंने ऐसा करने से केवल इनकार ही नहीं किया, अपितु प्रश्नवाचक ढंग से पूछा, 'हम ऐसा क्यों करें ?' इनके कहने पर इनके किसी साथी ने भी नवाब को सलाम नहीं किया।

एक बार कुछ कश्मीरी पंडित इनके पिता श्री गुरु तेगबहादुर जी के दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने उनके समक्ष अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का वर्णन किया। उन्होंने कहा कि औरंगजेब उन्हें मुसलमान होने के लिए विवश कर रहा है। यह सुनकर गुरु तेगबहादुर जी ने आँखें बंद कर लीं और सोच में पड़ गए। दस वर्षीय बालक गोविंदराय भी उस समय वहीं थे। उन्होंने कहा, "पिताजी ! चिंता का क्या क़ारण है ?" गुरुजी ने आँखें खोलकर गंभीरता से कहा, "बेटा ! हिंदू धर्म संकट में है। औरंगजेब सारे भारतवर्ष को मुसलमान बनाना चाहता है। उसके अत्याचारों को रोकने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है।" यह सुनकर बालक गोविंदराय ने अत्यंत गंभीरता और साहस के साथ कहा, "इस युग में आपसे बढ़कर और कौन महापुरुष हो सकता है? अतः आप ही धर्म की रक्षा करें।"

इन शब्दों को सुनकर गुरु महाराज ने कश्मीरी पंडितों से कहा, 'आप लोग औरंगजेब को कहला भेजें कि हमारे गुरु तेगबहादुर यदि इसलाम स्वीकार कर लेंगे तो हम भी मुसलमान हो जाएँगे।'